प्रथम संस्करण प्रति २,०००

मूल्य १.०० रुपया

मुद्रक
लालजी नागजी गणात्रा
मुद्रण स्थान : ट्रेण्ड प्रिन्टर्स, स्वदेशी मिल्स एस्टेट
गिरगांव, बम्बई ४.

स्वर्गीय नवल जेराजाणी
की पुण्य स्मृति में
समर्पित

जिनसे मुझे खादी-विकास के क्षेत्र में
महान आशाएं थीं परंतु काल ने
जिन्हें मुझसे असमय
छीन लिया।

विषयानुक्रमणिका

सैंतीसवाँ प्रकरण : आगामी प्रदर्शन की कल्पना सविस्तार—बम्बई में १००—२०० एकड़ जमीन में भारत के नक्शे के आकार में भिन्न-भिन्न विभागों की रचना की जाय—प्रत्येक विभाग में उस विशेष प्रदेश की प्राकृतिक अवस्था बताने का प्रयास किया जाय—वायुयान से फोटो लेने पर वह भारत का फोटो जैसा आवे—इसमें २ वर्ष लगें—१ करोड़ का व्यय हो—इत्यादि । पृष्ठ १३६

अड़तीसवाँ प्रकरण : दाहोद में कताई—वोहरा लोगों में शुरू हो कर बंद हो गयी—मीलों में चली—जम्बूसर के कपड़े के व्यापारियों ने व्यापार रोका और हानि से बच गये—बम्बई के खादी प्रेमियों द्वारा मेरी सेवाओं की कद्र—३० गज खादी भेंट—उसमें से कफन के लिए त्रिवेणी संगम के पवित्र जल से धुले दो टुकड़े सुरक्षित ।

पृष्ठ १३९

आमुख

आजादी हासिल करने के आन्दोलन में खादी ने अपना एक महत्वपूर्ण हक अदा किया है। गांधीजी ने जब से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक आन्दोलन शुरू किया तब से उन्होंने हाथ कती व हाथ बुनी खादी पहनने का संकल्प किया था और जनता को मूल मंत्र दिया था कि चरखे के बिना स्वराज्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। आजादी हासिल करने के लिए हमें खादी का बाना धारण करना चाहिए।

खादी के प्रारम्भ काल में गांधीजी ने हाथ कताई के लिए चरखे की बड़े परिश्रम से खोज की थी और जब अहमदाबाद से लगभग ३५ मील दूर बीजापुर गांव में चरखा और उस पर सूत कातनेवाला परिवार मिल गया तो उनकी प्रसन्नता का अंत न रहा था। इस कपड़े का नाम उन्होंने खादी रखा और सारे देश से उन्होंने "खादी-व्रत" लेने की मांग की थी। तब से घर-घर में चरखे चलने लगे और हाथ कते सूत की खादी के ताने-बाने के साथ ही आजादी-आन्दोलन का ताना-बाना भी सुदृढ़ होता चला गया।

चरखे की पुनः खोज और खादी-उत्पादन की इस छोटी, परंतु महत्वपूर्ण शुरुआत से आज तक खादी के क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। खादी का उत्पादन निरंतर बढ़ता ही जा रहा है और उसका स्तर भी ऊंचा उठता जा रहा है। आज हमारे देश में वर्ष में ७ करोड़ २० लाख रुपये की खादी की खपत होती है।

अम्बर चरखे के ईजाद होने के बाद तो खादी के उत्पादन व मूल के स्तर में और भी उन्नति हुई है। अम्बर चरखे में सुधार व प्रयोग के फलस्वरूप प्रगति की सम्भावनाएं इस दिशा में बढ़ती जा रही हैं। अम्बर चरखे की सफलता को देखते हुए सरकार ने पंचवर्षीय योजना में अपनी वस्त्र-नीति में हाथ कते सूत से हाथ-करघों पर ३० करोड़ गज कपड़े के उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया है।

खादी का उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ उसका प्रचार करने व उसकी बिक्री देश के सभी प्रदेशों में बढ़ाने का प्रश्न, खादी के आरम्भ काल से ही महत्वपूर्ण रहा है। मिल के कपड़े के मुकाबले खादी महंगी होने के बावजूद

उसकी बिक्री का बढ़ना कितनी उत्साहवर्धक व प्रशंसनीय बात है। इसका श्रेय देश के खादी-व्रतधारी कार्यकर्त्ताओं और खादी-बिक्री के कार्य में संलग्न संस्थाओं को है जिनका जाल देश में फैलता गया और सारे देश में खादी-उत्पादन के साथ प्रगतिशील ढंग पर बिक्री-संगठन भी स्थापित हो गया।

प्रस्तुत पुस्तक 'खादी की कहानी' में प्रिय जेराजाणी भाई ने खादी के प्रारम्भ काल से आज तक उस क्षेत्र में हुई प्रगति का सुन्दर व सजीव चित्रण किया है। गांधीजी के संपर्क में आकर व उनके विचारों से प्रभावित होकर उन्होंने अपने विदेशी कपड़े के हजारों रुपये के फलते-फूलते व्यवसाय को तिलांजलि दे दी और खादी-कार्य के लिए, विशेषकर उसकी बिक्री व प्रचार के लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया और आज भी वे उसी कार्य में लगे हुए हैं। खादी किन कठिनाइयों में से गुजरते हुए आज की उन्नत व्यवस्था को पहुंची है, गांधीजी का मार्गदर्शन पाकर श्री जेराजाणी भाई व उनके सहयोगियों ने खादी की बिक्री व उसके प्रचार के महान व पुण्य कार्य में क्या योगदान दिया, इसका रोचक वर्णन पाठक इस पुस्तक के पृष्ठों में पायेंगे।

इसके अलावा इस पुस्तक का एक और भी महत्व है। जैसे-जैसे खादी का उत्पादन बढ़ता जायगा वैसे-वैसे उसकी बिक्री की समस्या हमारे सामने उपस्थित होगी। खादी-ग्रामोद्योग आयोग के कार्यक्रम के अनुसार हमें चालू पंचवर्षीय योजना की अवधि में करीब ३० करोड़ गज खादी का उत्पादन व बिक्री करनी है। यह कोई आसान काम नहीं है। खादी-कर्मचारियों व खादी-संस्थाओं को इस पर ज्यादा ध्यान देना है। मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक में जेराजाणी भाई ने अपने अनुभव और ज्ञान का जो भंडार भरा है उसका लाभ हम उठा सकते हैं।

खादी-ग्रामोद्योग आयोग की ओर से इस पुस्तक को लोगों के सामने रखने में मुझे हर्ष होता है। मैं जेराजाणी भाई का अपनी ओर से और इस आयोग की की तरफ से आभार प्रदर्शन करता हूं कि आपने अपना कीमती समय खर्च कर "खादी की कहानी" जैसी बहुमूल्य पुस्तक लिखने का कष्ट उठाया है।

मुझे पूरी आशा है कि खादी-साहित्य में इस पुस्तक का महत्वपूर्ण स्थान होगा और खादी-कार्यकर्ताओं को इससे प्रेरणा व मार्गदर्शन प्राप्त होगा।

—वैकुंठ ल. मेहता

निवेदन

चीज़ चाहे कितनी उपयोगी और श्रेष्ठ हो तो भी केवल श्रद्धा के आधार पर अथवा किसी महान् व्यक्ति के नाम पर बहुत समय तक नहीं टिक सकती। भले खादी का जन्म दरिद्रनारायण के साथ एकरूपता साधने की विशद भावना से हुआ हो, भले हजारों लोगों ने सुन्दर और मुलायम वस्त्रों को त्याग कर मोटी और खुरदरी खादी मुंहमांगे मँहगे दाम देकर राष्ट्र के प्रति श्रद्धा और भक्ति के भाव रखते हुए ग्रहण कर ली हो, भले राष्ट्रपिता गांधीजी ने स्वयं खादी-कार्य की पुण्य प्रवृत्ति का संचालन किया है लेकिन खादी अंत में तो पहनने का एक तरह का कपड़ा ही है। और जीवनोपयोगी एक बड़ी जरूरत को पूरा करने का साधन है।

जीवनोपयोगी वस्तुओं के प्रचार और बिक्री के लिए अनुभव, योग्यता और अध्ययन जरूरी होते हैं। उनकी बिक्री के लिए शास्त्रों की रचना हो चुकी है। इसी प्रकार यदि खादी के प्रचार को श्रद्धा के वृत्त से बाहर भी व्यापक, मजबूत और स्थायी बनानी हो तो उसकी भी बिक्री कला का शास्त्र बनाना चाहिए। खादी बिक्री का अनुभव रखनेवाले व्यक्तियों की योग्यता का लाभ उठाना हो तो उनके द्वारा साहित्य तैयार करा लेना चाहिए। इस तरह की मांग खादी के इतिहास में एक लंबी मुद्दत से की जाती रही है। खादी-बिक्री के ज्ञान के लिए श्री विट्ठलदास जेराजाणी खादी के प्रारम्भ काल से ही प्रसिद्ध हैं। उनके जितना गहरा और अनुभव की कसौटी पर कसा हुआ खादी-बिक्री संबंधी ज्ञान देश भर में और किसी अन्य व्यक्ति में नहीं देखा गया है।

खादी काम के निष्णात स्वयं बापू ही थे। वे अपने जीवनकाल में सभी समस्याओं के हल बतलाते रहते थे। अब तो उनकी अनुपस्थिति में हमें उनके अनुभवों का लाभ उठाते हुए आगे बढ़ना होगा। सन् १९२८ में बापू ने उनको लिखा था "खादी प्रचार के विषय में विचार आया ही करते हैं। लेकिन इस काम को कौन करे? तुम पर दृष्टि जाती है। तुम बम्बई में कुछ कर ही रहे हो। तुमको सारे देश की खादी काम का अनुभव मिल चुका है। इसलिए शायद तुम खादी-प्रचार का काम देश भर में कर सकोगे।" बापू की इस

मांग को पूरा करने के लिए श्री जेराजाणी काका ने कतिपय विचार एकत्रित किये थे।

ता० ६-८-२६ के पत्र में बापू ने श्री कुसुम देसाई द्वारा दूसरी बार इस प्रकार लिखवाया : 'खादी वेचने के शास्त्र की पुस्तकें जरूर लिखना । उसमें कोई सुधार करने होंगे तो बापू कर लेंगे इस ओर प्रयत्न करने के लिए बापू ने खास लिखवाया है।'

खादी विक्री के क्षेत्र में श्री जेराजाणी काका जितने निष्णात हैं उतने ही व्यवहार परायण भी हैं। उनके मस्तिष्क में इस ज्ञान का भंडार भरा हुआ है। लेकिन वे ऐसा मानकर कुछ लिखने में हिचकते थे कि उनमें लिखने की योग्यता नहीं है। उनके साथ यदि हम वार्तालाप करें और उनकी स्मृति को जगा दें तो उनकी वाणी का अटूट झरना फूट निकले। वे खादी-प्रवृति के कितने ही पुनीत स्मरणीय प्रसंगों के चित्र हमारी नजर के सामने खड़े कर देने में बड़े समर्थ हैं। वे अत्यंत सूक्ष्म विवरण के साथ कड़ीवद्ध इतिहास उपस्थित कर सकते हैं। उनकी बोलने की शैली जितनी आकर्षक है उतनी ही रसिक भी है। यों विक्री कला को रसिक विषय कोई नहीं मानता। बहुतों को तो यह विषय अत्यंत नीरस लगता है। कई लोग कहते हैं कि इसमें रुपये आने पाई के सिवाय और रक्खा क्या है। लेकिन श्री जेराजाणी काका ही यह बतला सकते हैं कि वास्तव में यह विषय खूब ही रसपूर्ण और प्रेरक है। इस बात का समर्थन सन् १९२५ की निम्नलिखित घटना में से मिलेगा :

एक वार काश्मीर (साबरमती आश्रम) में श्री कृष्णदास गांधी खादी के विषय में तरह-तरह की जानकारी एकत्रित करने में लगे हुए थे और जितने भी प्रकार के खादी संबंधी अनुभव जाने जा सकें सबको लेखबध्द कर लेने की कोशिश कर रहे थे। श्री जेराजाणी काका कुछ समय के लिये वहां गये हुए थे। वे श्री कृष्णदास गांधी को खादी-विक्री कला संबंधी बातें सुनाया करते थे। ये बातें कितनी उपयोगी थीं यह बतलाते हुए श्री कृष्णदास गांधी ने बापू को एक पत्र में यों लिखा था- 'सदभाग्य से श्री जेराजाणी बाल्यावस्था से ही विक्री की कला किस प्रकार सीखे उनका इतिहास तथा उदाहरण दे देकर अन्य गम्भीर प्रकरण वे मुझे सुनाते और समझाते हैं। इससे मैं यह देख पाया हूँ कि वक्री कला का सीख लेना कोई खेल नहीं है। श्री जेराजाणी के उदाहरण से यह जाना जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति यदि निश्चय कर ले और किसी विषय में ओत-प्रोत हो जाय तो वह उस विषय को अत्यंत रसपूर्ण बना सकता है।

आम तौर पर यह लगेगा कि एक कपड़ा बेचनेवाले को विभिन्न प्रान्तों के निवासियों के शारीरिक गठन का अध्ययन करने की क्या जरूरत है? लेकिन श्री जेराजाणी ने तैयार सिले हुए कपड़े बेचने के संबंध में यह सब कुछ जान लिया है। वे मद्रास, बंगाल पंजाब तथा अन्य प्रान्तों के रहने वालों के पहनावे और उनके अलग-अलग नाम के अंक जबानी याद रखते हैं। वे ऐसी अनेक दूसरी बातें इस विषय में जोड़कर समझाते हैं जिनकी कल्पना भी नहीं की सकती। मुझे यह लोभ लग गया है कि इस तरह का सामान्य ज्ञान सब खादी-विद्यार्थियों को मिल सके तो कितना अच्छा हो। श्री जेराजाणी चन्द दिनों में ही यहां से भाग जावेंगे। इसलिए जब तक वे हैं तब तक उनके पास से जितना भी लूटा जा सके लूटने का प्रयत्न मैं करता रहूँगा। ऐसे अनुभवियों द्वारा बड़े परिश्रम से प्राप्त अनुभवों की कद्र हमें उनके गुजर जाने के बाद ही सूझती है, यह कैसी विचित्र बात है।

मुरब्बी मगन काका मरे तब जितना दुःख हुआ था उससे कहीं अधिक दुःख उनकी मृत्यु से तब हुआ जब मैंने बुनाई काम को पकड़ा। पगपग पर उनकी याद आने लगी। जब तक वे हयात रहे तब तक बहुत अधिक मेहनत करके उन्होंने जो हासिल कर लिया था उसकी ओर दृष्टि करने का भी मन न हुआ। अब उनके जाने पर हमें ज्ञान होता है कि हमने अपना कितना नुकसान कर लिया। लोग बनावटी खादी के नमूने परीक्षा के लिए भेजते ही रहते हैं। लेकिन उनकी सच्ची परीक्षा कर सकनेवाला अब कोई नहीं है। मुरब्बी मगन काका ने इस काम का जो ज्ञान प्राप्त कर लिया था वह उन्हीं के साथ चला गया। उनके द्वारा परीक्षण किये हुए कुछ नमूने पड़े हैं। इसके सिवाय उनके ज्ञान का कुछ भी लाभ आज खादी काम को प्राप्य नहीं है। इसी तरह की अनेक वस्तुएं जब मुझे सूझती थीं तभी मैं पछता कर रह जाता था। अब खादी के भिन्न-भिन्न अनुभवियों के पास से जो कुछ भी प्राप्त हो उसे लेने की ओर मेरी दृष्टि रहती है।"

इस पत्र की नकल बापू ने जेराजाणी को भेजते हुए यों लिखा था: यह नकल इस गरज से भेज रहा हूं कि तुम खादी-बिक्री शास्त्र की एक पुस्तक तैयार करो जैसा मगनलाल ने "चरखा शास्त्र" तैयार किया था।"

इससे प्रेरित होकर उन्होंने पुस्तक लिखने की कुछ सामग्री इकट्ठा की और उस सब को लेकर माथेरान चले गये। और वहां शांति से समय निकाल कर उन्होंने कुछ लेख लिख लिये। वे लेख उन्होंने एक मित्र को पढ़ जाने के लिए भेज दिये। लेकिन सत्याग्रह की लड़ाई के सिलसिले में उन मित्र के घर पर पुलिस ने छापा मारा और अन्य कागजात के साथ वे लेख भी गुम हो गये। जैसे-तैसे करके

वे लेख लिख गये थे। उनके खो जाने से ऐसी खिन्नता हुई कि दुबारा अब तक लिखने का क्रम जमा ही नहीं।

इस बीच में भारतीय इतिहास के अतिशय महत्वपूर्ण २८ वर्ष बीत गये। इस लम्बे अर्से में उन्होंने कई अमूल्य नये अनुभव प्राप्त करके अपनी अनुभवों की पूंजी और भी बढ़ा ली है। आंखों के इलाज के लिए वे यहां पोरबंदर में आये हैं। इस अवसर पर उन्होंने अपने विस्तृत ज्ञान-भंडार की कुछ गाथा हमारे द्वारा तैयार करा दी है। हमने उसे परिपूर्ण बनाने के हेतु से उनसे पूछ-पूछ कर और भी बहुत कुछ इस गाथा में जोड़ा है। इसके उपरांत सन् १९३० से लेकर अब तक की उनकी डायरियां, गांधी स्मृति संस्था से प्राप्त करके उनका बापू के साथ पत्र-व्यवहार तथा अन्य खादी-साहित्य इन सब का मन्थन करके उस गाथा को वर्तमान रूप में लाया गया है। श्री जेराजाणी काका के कहने के भाव को सम्पूर्ण सुरक्षित रखने की चेष्टा हमने बड़े ध्यान से की है। इसमें जो कुछ भी अच्छा और प्रभावकारी जान पड़े उसका श्रेय मुरब्बी काका को ही है लेकिन कहीं कोई कमी रह गयी मालूम हो तो निःसन्देह वह हमारी ही होगी।

देशभर के खादी प्रेमी उनके जीवन और कार्य के विषय में जानने की मांग करते रहे हैं। अभी कुछ दिनों पहले काका कुछ लिख लेने को तैयार भी हुए थे। लिखाने की शुरुआत भी की थी। लेकिन लम्बी आयु भर के असंख्य अनुभव, राष्ट्र के इन बहुमूल्य वर्षों के अनेक पवित्र प्रसंग, इन सब को लिखाने के लिए बहुत समय चाहिए और पुस्तक का आकार भी बहुत बड़ा हो जाय, इतना अधिक समय भी अभी उनके पास नहीं है। इसलिए अभी तो यह पुस्तक उनके खादी विषयक अनुभवों तक ही मर्यादित रखी गयी है। अनुकूल समय पाकर शेष भाग भी उनके पास बैठकर लिख लेने की हमारी धारणा है।

खादी के विषय में इस प्रकार की कोई अन्य पुस्तक लिखी गयी हो, ऐसा हमारे जानने में नहीं आया है। श्री जेराजाणी काका जैसा दूसरा खादी-बिक्री कला का अनुभवी मिलना कठिन है। इतने वृद्ध और अशक्त होते हुए भी वे मन की सुदृढ़ता को संभाले रखकर खादी को आधिकाधिक लोकप्रिय बनाने के काम में जूझते ही रहते हैं। और निश्चित योजना के अनुसार खादी को उत्तरोत्तर आगे ही बढ़ाते रहते है। ह्वाइट वे लेडला वाले मकान में खादी भवन की स्थापना, हजारों का मासिक भाड़ा तथा बहुसंख्यक कार्यकर्ताओं का वेतन ग्रामोद्योगी माल की बिक्रि में से पूरा हो सकता है ऐसी असम्भव लगनेवाली बात भी उन्होंने सम्भव

और सफल करके दिखा दी है। उनके प्रयत्नों से आशा खो बैठे हुए देशभर के बहुत से कलाकारों और कारीगरों ने नये सिरे से काम और प्रोत्साहन प्राप्त किया है। देश की कितनी ही प्रकार की कला कारीगरी को उन्होंने ठेठ मृत्यु के मुख से निकालकर जीवन-दान दिया है। इतना ही नहीं बल्कि भारत की प्राचीन कला-कारीगरी का विश्व के कला-पारखियों के समक्ष गौरव बढ़ाया है।

बापू का एक कथन इस समय याद आ रहा है "खादी का काम का आरम्भ एक छोटी सी घटना से हुआ था। मैंने चरखे का काम शुरु किया, तब श्री विट्ठल दास भाई और कुछ बहिनें मेरे साथ थीं। उनको (विठ्ठलदासभाई) मैं अपनी बात समझा सकने में सफल हुआ था। उन्हें तो मेरे साथ ही जीना और मरना था। उन्होंने अपनी कपड़े की दूकान मेरे कहने से छोड़ी और खादी के इस भिखारी काम में आ गये। उस समय यह तो कल्पना ही नहीं थी कि हमारे भविष्य में क्या लिखा हुआ है। आज तो करोड़ दो करोड़ जनता चरखे के प्रभाव में आ गयी है।"

श्री जेराजाणी काका ने परदेशी कपड़े का बड़ा व्यापार छोड़कर बिल्कुल छोटी खादी की दूकान कर ली थी। उस छोटे से काम ने आज विराट रूप धारण कर लिया है। आज वे अपनी लगन और अनुभव के बल पर और बापू के प्रति अपनी निष्काम भक्ति से देशभर के खादी काम का मार्गदर्शन कर रहे हैं।

बापू ने देश के कामों की नींव जमाने में अनेक निष्ठावान कार्यकर्ताओं की एक पीढ़ी पैदा कर दी थी। वे सब उनकी कसौटी में कसे जाकर बापू की प्रिय प्रवृत्तिओं में एकरूप बन गये थे। बापू के निर्वाण के बाद तो बापू द्वारा अधूरे छोड़े हुए कामों को पूरा करने में दुगने वेग से लग गये हैं। श्री जेराजाणी काका इसी पीढ़ी की एक विरल विभूति हैं। उनके अनुभव राष्ट्र के लिए निधिरूप हैं जिससे भविष्य के कार्यकर्त्ता उत्साह और प्रेरणा प्राप्त करते रहेंगे।

यह पुस्तक मात्र खादी-बिक्री कला का शास्त्र ही नहीं है, इसमें ज्ञान का कोरा संग्रह ही नहीं है बल्कि अपने देश के पिछले पचास वर्षों का पवित्र इति-हास अनेक अमूल्य प्रसंगों के साथ-साथ इस पुस्तक में गुंथा हुआ है। यह पुस्तक बापू के साथ के अनेक बहुमूल्य प्रसंगों, वार्तालापों और पत्रों से छलाछल भरी हुई है। इसलिए इसके द्वारा गांधी साहित्य में एक अति उपयोगी पुस्तक की वृद्धि होगी। हमारा विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़कर वाचकों को बापू के साथ परोक्ष सम्पर्क साधने की अनुभूति और लाभ प्राप्त होगा।

बापू के पत्रों का इस पुस्तक में छूट से उपयोग करने देने के लिए नव-जीवन ट्रस्ट के प्रति हम आभार प्रदर्शित करते हैं।

-मथुरादास गुप्ता

हिन्दी संस्करण के विषय में लेखक के दो शब्द

पोरबंदर में अपनी आंखों के इलाज के लिए १ मास तक रहा था। उस समय मैंने अपने खादी संबंधी अनुभव गुजराती में लिखा दिये थे। इसका हिन्दी अनुवाद कराने की इच्छा हुई और यह चिन्ता सी रहने लगी कि हिंदी का अनुवाद कौन करे।

ता० ९-२-५७ को मैं २ महीने के लिए अपनी आँखों का प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा इलाज कराने के लिए जयपुर आया। वहां हिन्दी अनुवाद की बात मैंने श्री बलवंत सिंहजी से कही। उन्हें तुरंत याद आया कि श्री जमुनाप्रसाद मथुरिया यदि उस काम को स्वीकार कर लें तो वे कर सकेंगे। श्री बलवंतसिंह जी का स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि जो काम करना हो वह तत्काल किया जाय। वे श्री जमुनाप्रसाद मथुरिया से तुरंत मिले। ये भाई वर्षों तक च खा संघ का काम करते रहे हैं। खादी कार्य की इन्हें बहुत जानकारी है। इतना ही नहीं, इन्होंने काश्मीर तथा अन्य स्थानों में प्रसंग आने पर मेरे साथीदार के रूप में काम किया है। खादी के अनुभवों की शायद यह पहली ही पुस्तक लिखी गयी है। यह पुस्तक हिंदी में प्रकाशित हो यह बात भी जमुनाप्रसाद मथुरिया को पसन्द आयी। उन्होंने सहर्ष अनुवाद कर देना स्वीकार कर लिया और थोड़े ही दिनों में उसे पूरा भी कर दिया। इस प्रकार इस पुस्तक के हिन्दी में प्रकाशित होने में उनका भाग अमूल्य है और इसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ।

जयपुर
ता० १७-३-५७

जेराजाणी

प्रास्ताविक

ज़िन्दगी याने अनुभवों की माला। प्रत्येक क्षण मानव नित नया अनुभव किया करता है और उससे अपना जीवन गढ़ता जाता है। यह वात अलग है कि वे अनुभव दूसरों के लिए कहाँ तक कीमती या उपयोगी हैं। आज तक के जीवन में मैं अगणित अनुभवों में से गुजरा हूँ जिनके कारण मैं अपने आपको धन्य मानता हूँ; ऐसा कहूँ तो कोई वेजा वात नहीं है। मैं एक व्यापारी का पुत्र था और व्यापार ही मेरा मुख्य धंधा था। यदि मैं स्वयं के लिए व्यापारी शब्द प्रयोग करूँ तो कहना होगा कि मेरे पास अनुभवोंकी एक खासी पूँजी जमा हो गई थी। मैं सोचता था कि यदि इस पूँजी को दवा रखने के वजाय वजार में खुला रखा जा सके तो कैसा हो? वापू की छाया में आने के वाद उनका ऐसा आग्रह रहा कि मेरी व्यापार-कुशलता का उपयोग देश के हित में होना चाहिए। वापू के इस आग्रह के वश होकर मैं अपनी विक्री-कला का उपयोग खादी के प्रचार में करने लगा। धीरे-धीरे खादी की खपत की जटिल समस्या वापू ने कई वार मेरे द्वारा हल की। स्नेही मित्रों और खादी प्रेमियों ने वार-वार मुझे सूचना दी कि मेरे पास यह जो अनुभव या विक्री करने की योग्यता है उसे दूसरों को सिखाया जा सके तो उचित हो। मैं इन सूचनाओं पर यह मान कर ध्यान नहीं देता था कि इनके इस आग्रह में मेरे गुण के प्रसार की दृष्टि की अपेक्षा स्वजनों की आत्मीयता ही विशेष हो सकती है।

मेरा भाषाज्ञान गुजराती की चार पुस्तकों तक सीमित था। इसलिए अपने में इन अनुभवों को लिख डालने की योग्यता मैं नहीं मानता था। एक वार भाई कृष्णदास गांधी ने वापू से यह मांग की कि मुझे अपने विक्रीकार के अनुभव लिखने चाहिए। ता. ६-२-२१, के एक पत्र में वापू ने मुझे लिखा, "जैसे मगन-लाल ने 'खादी का वुनाई-शास्त्र' नाम की पुस्तक लिखी है वैसे तुम भी खादी

का विक्री–शास्त्र नाम की पुस्तक जरूर लिखना। लेकिन यह काम करने की उस समय मेरी हिम्मत नहीं हुई। फिर जब दुबारा बात उठायी गयी तब मैंने डरते-डरते कुछ थोड़ा लिखा। काका साहब उसकी भाषा दुरुस्त करनेवाले थे। परंतु आन्दोलन के दिनों में वे लेख कहीं खो गये। तब से वह काम अब तक पड़ा ही रहा क्योंकि इसके लिए आवश्यक अनुकूलता नहीं मिल पाती थी। प्रवृतियों में से समय बचता ही नहीं था।

शायद ईश्वर को यह काम मुझसे करा लेना मंजूर था इसलिए मुझे अनिवार्य आराम लेना पड़ा––दुर्भाग्य से या कहो कि सौभाग्य से मेरी आँखों में मोतिया निकल आया। इससे लिखना–पढ़ना छूट गया। आँखों के इलाज के लिए पोरबन्दर गया। वहाँ शहर के वातावरण से कोई दो–सवा–दो मील दूर छाया गांधी आश्रम में श्री बाघजी भाई निसर्गोपचार द्वारा रोग–निवारण के सफल प्रयत्न करते थे। उन्हीं के पास मैंने अपनी आँखें रोग–मुक्त कराने का निश्चय किया। उन्होंने यह सलाह दी कि कम–से–कम तीन-चार सप्ताह ठहरना होगा। मैंने मन ही मन उनका आभार इसलिए और माना कि मैं इस सुअवसर को जीवन के अनुभव लिख डालने के लिए कभी न जाने दूँगा। कुमारी सरला बहिन मेहता मेरे साथ थीं। उनकी सहायता से मैंने यह काम शुरु कर दिया। शुरू करते ही मुझे इस काम की विकटता के दर्शन होने लगे। वर्षों पुराने अनुभवों की याद ताजी करनी थी, सोई हुई स्मृतियों को बड़े प्रयत्न से जगाना था, पैंतीस वर्षों की डाइरियों के हजारेक पन्ने उलट–पुलट करने थे। बापूजी तथा दूसरे अनेक कार्यकर मित्रों के साथ का पत्र–व्यवहार पढ़ जाना था, सारांश यह कि पैंतीस वर्ष मुझे फिर से जी लेने थे।

पर जिन्दगी का एक अनुपम लाभ इसमें मुझे मिला। श्रावणी पूर्णिमा के दिन मैंने यह लेख लिखना शुरू किया। उस प्रदेश में इस पूर्णिमा को 'नारियली पूर्णिमा' कहते हैं। नारियली पूर्णिमा देशावरों में सामुद्रिक व्यापार करनेवालों का विशेष त्यौहार माना जाता है। जान को हथेली पर रख कर अनेक समुद्रों में पर्यटन करनेवाला प्रत्येक व्यापारी इस दिन अपने इष्ट देव सागर का पूजन करता है, उसे नारियल चढ़ाता है और उसकी कृपा की याचना करता है। इसी दिन व्यापारी अपनी नौकाओं को फिर से समुद्र में छोड़ते हैं और नई यात्रा तथा नये व्यापार का श्रीगणेश करते हैं, मैंने भी ठीक इसी दिन अपने स्मृति सागर

को मन्थन शुरु किया और इस मन्थन में से निकले हुए शंख, सीप और मोती मैं यहाँ प्रस्तुत करता हूँ। मैंने इतनी सावधानी जरूर रखी है कि मैंने व्यक्तिगत अनुभवों को केन्द्रस्थान में रख दिया है, अर्थात् उन्हें सूक्ष्म बनाया है जिससे मैं व्यक्तिगत रूप में इस लेखों के परदे के पीछे रह सकूँ। तो भी मैं वाचकों से यह नम्र प्रार्थना करता हूँ कि यदि मेरी तमाम सावधानी के होते हुए भी उन्हें कहीं कोई व्यक्तिगत बात या मेरा कोई सामाजिक संबंध या ऐसी कोई राजकीय घटना जिसमें व्यक्तिरूप से ही जुड़ा होऊँ, इन प्रकरणों में झलकती दिखाई दे तो वे मुझे क्षमा करके उसे निभा लेंगे। ये प्रकरण मेरे विषय के न होकर खादी के विषय के रहें ऐसी भावना रखते हुए मैं अब अपने अनुभव लिखाने का काम शुरू करता हूँ।

पहला प्रकरण

पहले के जामनगर राज्य के जाम मंत्रालिया नामय गांव में ता० ५ सितम्बर १८८२, सिती द्वितीय श्रावण वदी अष्टमी संवत १९३८ (उत्तर भारत के पंचांग के अनुसार भाद्रपदवदी अष्टमी) मंगलवार जन्माष्टमी के पवित्र दिन मेरा जन्म हुआ था। मुझे याद है कि वचपन में मैं खेल-कूद—विशेपकर साहस और पुरुषार्थ से भरे हुए खेल--का वड़ा शौकीन था। होली पर वालकों के दल में मैं जरूर होता, कंडे चुराता, तूफान करता और उसमें वड़ा आनन्द पाता था। मेरे पिता अफ्रीका के जंजीवार नामक नगर में रहते थे, इसलिए मेरे वचपन का अधिक समय वहीं गुजरा था। मेरी शिक्षा गुजराती की चौथी पुस्तक और अंग्रेजी की दूसरी पुस्तक तक हो पायी थी। उसके वाद मुझे वंवई जाना पड़ा। मेरे घर की आर्थिक स्थिति गरीव कही जाने लायक थी। इसलिए वम्वई में मित्रों की सहायता और आधी फीस की रियायत से फोर्ट हाई स्कूल में प्रविष्ट हुआ और मैंने वहाँ की तीसरी कक्षा पास की। फिर आर्थिक कठिनाई के कारण पढ़ना छोड़ दिया।

उस जमाने में इतनी-सी अंग्रेजी जाननेवाले की गिनती भी अंग्रेजी पढ़ों में होती थी। मेरे वड़े भाई ने मुझे व्यापार में डालने की दृष्टि से मेरे मौसा की परदेशी कपड़े की दूकान पर वैठाया। दूकान प्रातः सात वजे खुलती थी और सायं आठ वजे वंद होती थी। न विजली थी न गैस के हंडे। पीतल के सात वत्ती वाले दिये के प्रकाश से काम चलता था। मुझे याद है कि पहले दिन प्रातः जल्दी उठ कर मैं मौसा के घर पर गया था। उन्होंने मुझे उस नौकर के हवाले कर दिया जो दूकान खोलकर सफाई किया करता था और उससे कह दिया कि वह मुझे काम सिखाये। उसने लाल कपड़े की पोटली जिसमें दूकान के वही-खाते वंधे थे तथा दूकान के वड़े ताले की लंवी चावी मुझे ले चलने को दी, मुझे यह अच्छा तो न लगा लेकिन काम सीखना है और फिर आगे वढ़ा जायगा यह सोचकर मैंने वह पहला पाठ पूरा किया। दूकान पर पहुंचते ही उसने दूसरा पाठ दिया। हाथ में झाड़ू पकड़ा दी और वताया कि सफाई कैसे की

जाती है। वह भी मैंने मन मसोसते हुए किया। तीसरा पाठ पीतल की बैठक वाले दिये को माँजने का था। वह भी मैंने किया। इतने में दूकान के मुनीमजी आ पहुँचे। मौसा ने उनसे मेरी पहचान करायी और दूकान का काम सिखाने को कहा। मुनीम जी ने मुझसे एक प्रश्न किया, "सत्रह रुपये में से तीन रुपये दो आने के हिसाब से बटाव काटा जाय तो शेष क्या रहे?" मैंने कागज कलम की ओर दृष्टि फेंकी तो वे समझ गये और बोले कि जबानी करके बताओ, मैंने कहा "मैं गणित में हमेशा प्रथम रहा हूँ। जरा-सा कागज-पेंसिल पाऊं तो अभी तुरंत बता दूँगा।" उन्होंने इन्कार कर दिया और इस तरह मैं उनकी पहली परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहा। उन्होंने मेरे मौसा को सूचित कर दिया कि विठ्ठल अंग्रेजी पढ़ा भले हो लेकिन गुणी बिलकुल नहीं है।

मुनीमजी शाक बाजार में से शाक-भाजी की एक बड़ी थैली भर लाये थे। मुझे उस थैली को घर पहुँचाने की आज्ञा हुई। मेरी समझ में यह न आया कि उस थैली को घर पहुँचा देने में मुझे कौन-सा शिक्षण मिलेगा। मगर मुनीमजी से और बहुत काम सीख लेने की अभिलाषा से मैंने वह अरुचिकर काम भी कर दिया। तीन महीने पूरे होने पर मैंने कपड़ों के लिए मौसा से दस रुपये माँगे। उन्होंने उत्तर दिया-"सीखने के लिए आये हो नौकरी पर नहीं।" मानो तीन महीने के मेरे काम की कीमत दस रुपये भी नहीं हुए। इससे मेरा दिल दुखा। आसपास की दूकानों में मेरे जैसे कई लड़के तीन महीने में नौकरी पर रखे जाकर कमाई शुरु कर चुके थे यह मैंने देखा था। इसलिए मैंने भी इधर-उधर तलाश किया तो एक रेशीम कपड़े के व्यापारी ने मुझे डेढ़ सौ रुपये वार्षिक वेतन पर नौकर रखना मंजूर किया। हिसाब-किताब मैंने उन मुनीम जी से सीख लिया था। लेकिन यहाँ मुझे तकाजे का यानी उधार-वसूली का काम मिला था। मुझे इस काम का ज्ञान नहीं था लेकिन अड़ोस-पड़ोस की दूकानों के साथीदारों की मदद से मैंने वह सीख लिया। इस काम में उधार वसूल करके रुपया सुरक्षित रूप में दूकान पर पहुँचाना होता है। इसलिए एक भीतरी मजबूत जेबवाला कुर्ता बनवाना चाहा और उसके लिए दूकान मालिक से दस रुपये माँगे। यद्यपि वेतन का हिसाब तो वर्ष के अंत में होता था तथापि यह रिवाज था कि हर महीने कुछ रकम मिल जाया करती थी। अभी मैं बम्बई में करीब स्थिर भी नहीं हो पाया था कि इसी समय वहाँ जोर से प्लेग फैली और बम्बई करीब खाली हो गया। मैं भी छुट्टी पर्यो

के साथ देश चला गया। लौटने पर वह नौकरी नहीं मिली। लेकिन उसी वेतन पर एक और रेशमी कपड़े की दूकान पर काम मिल गया। वहाँ लगभग चार वर्ष काम किया। योग्यता बढ़ती गयी। यह नौकरी छोड़ी तब मैं मुनीम बन चुका था। वर्ष के चार सौ रुपये मिलते थे। उस जमाने में ऐसी नौकरी की बड़ी कद्र होती थी। नौकरी के साथ-साथ घड़ी इत्यादि की खरीद बिक्री मैं किया करता था। ऐसे धोखेवाले रेशमी कपड़े के काम को आज मैं धंधा नहीं कह सकता, लेकिन तब मैं इतना कहाँ समझता था? उस काम से मैंने काफी रुपया कमा लिया था। बाद में मैंने विलायती कपड़े का स्वतंत्र व्यापार किया, यद्यपि यह काम छोटे पैमाने पर ही था तो भी उसमें मुझे बिक्रीकार की तालीम खूब मिली थी। इस तालीम के बीज तो मेरे पिता ने ग्यारह वर्ष की अवस्था में बोये थे।

अफ्रीका के जंजीबार नगर में हमारी दूकान थी। मैं पढ़ता था। पाठशाला में एक बार छुटियाँ थीं। एक दिन मेरे पिता ने कहा, "तुझे पढ़ाई के साथ-साथ व्यापार ज्ञान भी प्राप्त करते रहना चाहिए।" ऐसा कह कर उन्होंने मेरे हाथ में लोहे के तार में पिरोई हुई कोई पचास दाँत कुरेदनी और कान कुरेदनी देकर कहा कि इस लच्छे को दिखाते हुए चलना और आवाज लगाते रहना "दाँत कुरेजनी कान कुरेदनी दो-दो पैसे लोग आवाज सुनेंगे तो जरूरत होने से खरीदेंगे। व्यापार करने जैसी मेरी उम्र उस समय नहीं थी और मेरा मन उसमें नहीं लगता था। मेरा मन तो साथियों के साथ खेलने में था। इसलिए अनायास मेरे मुँह से ये शब्द निकल गये 'मुझे तो खेलने जाना है। मित्र लोग मेरी राह देखते होंगे।" पिता का पुण्य प्रकोप प्रकट हुआ और वे चिल्लाकर बोले "तू व्यापारी का लड़का है। तुझे व्यापार करके रोटी खानी है या भीख माँगनी है? तुझे दाँत-कान कुरदनी बेचने जाना ही होगा।" मैं घबरा गया और रो पड़ा तो ऊपर से एक थप्पड़ भी पड़ा। रोते-रोते ही आवाज लगायी "दाँत कुरेदनी-कान कुरेदनी।" पिताजी ने उत्साहित किया, "ऐसी रोनी आवाज कौन सुनेगा? जोर से चिल्ला चिल्लाकर पुकार जिससे तीसरी मंजिल पर रहनेवाले भी सुनें।" मैंने जोर की आवाज देना शुरू किया और दाँत-कान कुरेदनी की बिक्री शुरु हुई। पहली जोड़ी बिकी और दो पैसे मिले। थोड़े ही समय में सब बिक गई और सौ पैसे जेब में हो गये। घर पहुँचते ही प्रफुल्लित होते हुए पिताजी से कहा, "सब दाँत-कान कुरेदनी बेच आया, लो ये पैसे।" पिता के मुख पर संतोष छा गया।

यह पाठ मेरे जीवन के साथ दृढ़ता से जुड़ा रहा है। यह अनमोल था और आज भी इस प्रसंग को मैं अत्यंत आभार की भावना से याद किया करता हूं। "जोर से आवाज लगा कि तीसरी मंजिल पर रहनेवाले भी सुनें।" ये शब्द कानों में इस तरह गूंजते रहते हैं मानों कल ही बोले गये हों। इसी तरह के अनेक अनुभवों ने मुझे विक्रीकार बनाया और इन्हीं अनुभवों के कारण मैं यथार्थ व्यापारी बन सका।

दूसरा प्रकरण

सन १९०५-६ में भारत के उस समय के वाइसराय लार्ड कर्जन ने बंगाल के टुकड़े किये। इससे बंगालियों में असन्तोष फैला और वह उग्र होता गया। बंगाल के टुकड़े न होने देने के लिए देशव्यापी आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन के प्रणेता श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, लाल लाजपतराय, लोकमान्य बाल गंगधर तिलक और श्री बिपिनचन्द्र पाल थे। लाल, बाल और पाल के नाम देश भर में गूंजने लगे। ब्रिटिश माल के बहिष्कार की आवाज़ उठी। इस आवाज को मूर्तरूप देने के लिए लोकमान्य की प्ररणा से बम्बई में बम्बई स्वदेशी को आपरेटिव स्टोर्स लिमिटेड नाम की एक संस्था बनी थी। मैं उस संस्था में शरीक हुआ। जब मैं इस संस्था में काम कर रहा था उन्हीं दिनों में गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से बम्बई में आये। वे श्री रेवाशंकर जगजीवन झवेरी के बंगले पर उतरे थे। एक बार श्री झवेरी के साथ गांधी जी स्वदेशी स्टोर देखने आये।

स्टोर में स्वदेशी माल ही बेचने का आग्रह रखा जाता था। जीवन की अनेक आवश्यक स्वदेशी वस्तुओं के उपरान्त इसमें स्वदेशी मिलों के कपड़े को भी स्थान मिला था। देशी या विलायती सूत से हाथ-करघे पर बुने हुए कपड़े भी यहाँ बिकते थे। गांधीजी ने घूम कर स्टोर का कोना-कोना देखा। जब वे देख चुके तो स्वाभाविक तौर पर मैंने उनका स्टोर सम्बन्धी अभिप्राय जानना चाहा। उनका उत्तर था: "सच्चे अर्थ में यहाँ भी स्वदेशी नहीं है। मैं तो इसे विलायती स्टोर कहूँगा।" यह सुनते ही हम चौंक गये।

बापू का कथन था-स्वदेशी स्वराज्य की पहली सीढ़ी है। उन्होंने सन १९०९ में 'हिंद स्वराज' में लिखा था: "चर्खे के बिना स्वराज नहीं हो सकता। इस पर मुझे सूझा कि हरेक व्यक्ति को कातना चाहिए। लेकिन उस समय में 'करघा' और चरखा इन दोनों का भेद नहीं समझता था। इसलिए मैंने हिन्दू

स्वराज्य में चरखे के स्थान में करघा शब्द का प्रयोग किया है। मेरे मन में चरखे की खोज उसी समय हो चुकी थी। लेकिन उसके प्रत्यक्ष दर्शन और शक्ति का ज्ञान तो मुझे आश्रम स्थापना के बाद के तीन वर्षों में १९१८ में हुए।"

स्वदेशी स्टोर में जो मिलों का कपड़ा था, वह उनकी धारणा के अनुसार स्वदेशी नहीं था। बापू का यह भाव समझने में इस तरह मुझे काफी वक्त लग गया।

सन् १९१५ मे गांधीजी ने कोचरब आश्रम की स्थापना की। उसमें कपड़ा बुनने के करघे लगाये गये जिस पर मिलों का सूत बुना जाता था। लेकिन सूत के लिए मिलों पर आधार रखना उचित नहीं लगा। इससे हाथ कताई के लिए चरखे की खोज की गयी। उन दिनों में अहमदाबाद के आसपास चरखे का चलन अदृष्ट हो चुका था। इसलिए चरखा खोजने में काफी परिश्रम हुआ। गंगा बेन ने बीजापुर में (अमदाबाद से लगभग ३९ मील) चरखा और उस पर कातनेवाला एक कुटुम्ब ढूँढ निकाला। बापू की प्रसन्नता का पार न रहा। फिर तो चरखे गूंजने लगे। उनके सूत में से कपड़ा बुना जाने लगा। इस कपड़े का नाम बापू ने "खादी" रखा। सन् १९१९ में बापू ने सारे देश से "खादी व्रत" लेने की माँग की और सूत के धागे में स्वराज का नाम नाद गूंजने लगा। तब सब को विश्वास हुआ कि विलायती कपड़े के बहिष्कार को सफल बनाने की कुंजी खादी-प्रचार में है।

खिलाफत आन्दोलन के समय देश में जोश की बाढ़ आई हुई थी। इस आन्दोलन को सफल बनाने के लिए स्वराज सभा कायम हुई। प्रति दिन शाम को गांधीजी वहाँ जाते थे। मैं भी हमेशा वहाँ जाता था। उनके साथ मेरा परिचय बढ़ता जा रहा था। देश भर में विलायती कपड़े की होली जलाने की आवाज गांधी-जी ने उठायी। मैंने घूम-घूम कर घर-घर में से विलायती कपड़ा इकट्ठा करने में भाग लिया। बम्बई में एलफिंस्टन मिल के चौगान में नियत दिन विलायती कपड़े की एक प्रचंड होली जलाई गयी। उस होली की चिनगारियां देश भर में फैलीं।

विलायती कपड़े की होली के सम्बन्ध की चिरस्मरणीय घटनाएँ मुझे याद हैं। इनमें से एक बात उस समय की है जब जलियाँवाला बाग के हत्याकांड

की जाँच में श्री जयकर बापूजी के साथ शरीक हुए थे। एक दिन प्रातः श्री जयकर के बंगले पर जाकर विलायती कपड़ा माँगा। उन्होंने कहा, "इस कार्यक्रम से मैं सहमत नहीं हूँ लेकिन बापू के काम में मुझे अपना नम्र भाग अर्पित करना ही चाहिए।" इतना कह कर उन्होंने अपनी पत्नी को बुला कर मेरे आने का कारण समझाया और कहा कि चाहे सारे विलायती कपड़े मत दे दो लेकिन प्रतीक के तौर पर कुछ तो जरूर दो। उनकी पत्नी ने ज्यादा-से-ज्यादा मूल्यवान जरी की साड़ियाँ मेरे हाथ में रख दीं। मैंने तो वे साड़ियाँ काँच की आलमारी में सजा दीं और उन पर यह अंकित किया कि बड़े-बड़े लोग भी विलायती कपड़े की होली के लिए प्रसन्नता से कैसी-कैसी बहुमूल्य चीजें दे रहे हैं। व्यापारी जो ठहरा। बेचने के माल को भी मैं पूरी तरह सजा कर शो केस में रखता था जिससे वह झट बिक जाये। होली के निमित्त मिले हुए कपड़े भी मैं इतनी अच्छी सजावट से शो केस में रखवाता जिसे देखते ही लोग समझ जायें कि लोग कैसे कीमती कपड़े भी प्रसन्नता से जला डालने के लिए दे रहे हैं। श्री जयकर की साड़ियाँ जब शो केस में सजा दी गयी तो उनका बनानेवाला कारीगर एक दिन उन्हें देख कर पहचान गया और मुझसे आकर बोला ये साड़ियाँ मैंने श्री जयकर साहब के लिए बनाई थीं। उन्होंने मुझे इनके ७५० रुपये दिये थे। आप इन साड़ियों की होली करेंगे ?

ऐसे बहुमूल्य कपड़ों के साथ-साथ रद्दी चिथड़े भी मिलते थे, जैसे कि ग्रहण के समय "दे दान, छूटे ग्रहण" की आवाज के उत्तर में खिड़कियों में से फेंके जाते हैं। मेरे एक आदरणीय मित्र ने अपनी पत्नी को बुला कर कहा था, "हम लोग विलायती कपड़े का व्यापार करते हैं और गांधीजी की विलायती कपड़े की होली के निमित्त यह कपड़े माँगने आया है । इसे कुछ देना चाहिए।" उनकी पत्नी न जो दिया वह ग्रहण के दान जैसा था।

प्रथम विश्व युद्ध के समय कपड़े के व्यापार से भारी कमाई करनेवाले श्री मनसुखभाई ओघड़ के साथ मेरा घनिष्ट परिचय था । उनके पास भी मैं पहुँचा । वे बोले, "आज भोजन करने आना तब विचार कर लेंगे । भोजन कर के जैसे दक्षिणा दी जाती है उसी तरह जब मैं भोजन कर चुका तो उन्होंने कपड़ों की एक आलमारी खोल कर मुझसे कहा, "जो चाहो सो सब निकाल लो।"

कई कपड़े इनमें बिलकुल कोरे थे । उन्हें देख कर श्री मनसुख भाई ने बताया, "ये तो अभी हाल ही में अंग्रेजी पेटी में से बारह सौ रुपये का मूल्य चुका कर लाया हूँ, अभी तो मेरे अंग से इनका स्पर्श तक नहीं हुआ है ।" मैंने तो सब के सब ले लिये ।

स्व. उमर सोत्रानी बापू के खास भक्त थे । वे पूरे पाश्चात्य ढंग के थे और पूरे ठाट से रहते थे । उनकी पतलून पर एक भी सिकुड़न नहीं देखी जा सकती थी । इसलिए पतलूनों की घड़ी ज्यों की त्यों कायम रखने के लिए उन्होंने खास आलमारी बनवायी थी । उन्होंने विलायती कपड़े की पेटियों की लारियाँ भर-भर के हमारे यहां ऊँचा ढेर लगाया था ।

मेरी पत्नी वेता बाई भी बापू के ऐसे कार्यक्रमों से परिचित रहा करती थीं । विलायती कपड़ों की होली का निर्णय जब किया गया तब इस काम में सबसे अग्रणी श्रीमती अवन्तिका बाई गोखले और श्रीमती रमा बेन कामदार थीं । उन्होंने एक बार बापू से कहा–"पुरुष तो खूब देंगे लेकिन स्त्रियाँ जलाने के लिए कपड़े नहीं देंगी । कपड़े इकट्ठे करने का नियत दिन जब नजदीक आया तब एक दिन पहले मेरी पत्नी ने मुझसे कहा, "मैं भी ये सब विलायती कपड़े निकाल दूँगी ।" मैंने सिर्फ इतना कहा, "बापू यही चाहते हैं ।" यह सुनकर वे कुछ विचार में पड़ गयी । शाम को उन्होंने फिर आलमारी खोल कर देखा कि क्या कपड़े हैं? हमारे यहाँ ऐसा रिवाज है कि विवाह के समय इतने अधिक कपड़े दिये जाते हैं कि उनमें से कई तो जिन्दगी भर चलें । मेरी पत्नी ने सारे के सारे कपड़ों की ढेरी लगा दी । अगली सुबह ही मैं घरों में कपड़े माँगने के लिए घूमनेवाला था । सबेरा होते ही अपने घर से ही अच्छी बोहनी हुई । इन कपड़ो में कई जरी की साड़ियों की किनारियाँ पक्की जरी की थीं । ऐसी किनारियों में से चांदी निकाली जा सकेगी, इस उद्देश्य से हम किनारियाँ फाड़ रहे थे । यह देख कर एक पड़ोसी बहन से न रहा गया और वे बोलीं, "तुम इस तरह किनारी निकाल कर साड़ी और किनारी दोनों क्यों बिगाड़ रही हो । इसका प्रत्येक टाँका उधेड़ कर किनारी साबित निकल सकती और साड़ी भी नहीं बिगड़ती । तुम्हें नहीं आता तो मुझसे कहा होता मैं कर देती ।" उस बेचारी बहिन को क्या न ज्ञात था कि ये होली में होम की जायेंगी । हमने उन्हें बापू की विलायती कपड़े

की योजना का रहस्य समझाया। लेकिन उनकी समझ में एक बात नहीं आयी और चिल्ला कर बोलीं, "सौभाग्यवती के वस्त्र भी जलाये जा सकते हैं? यदि तुम इन कपड़ो के स्पर्श को दे दो। मेरे कानों में तो बापू के ये शब्द गूँज रहे थे कि विलायती कपड़े तो प्लेग के चूहों के समान त्याज्य हैं। प्लेग के चूहे को पड़ोसी के घर में नहीं फेंक सकते। हमारी आवाज सुनकर अड़ोस-पड़ोस के लोग एकत्रित हो गये। लेकिन उनकी सलाह हमें बिलकुल नहीं भायी। किनारियों को गलवा कर इतनी चांदी निकली कि उसका एक पेंचदार लोटा बनवाया गया जो आज भी मेरे पास उस समय की याद कराने के लिए मौजूद है। अड़ोस-पड़ोस के लोग तो यही कहने लगे थे "इन पति-पत्नी का तो दिमाग बिलकुल बिगड़ गया है।" मैं कपड़ो की गठड़ी उठाकर सीधा बापू के पास पहुँचा। देखते ही उनका प्रश्न हुआ कि "ये क्या बाँध लाये हो?" मैंने उत्तर दिया कि तीर्थ तो घर जला कर करना चाहिए न? इसलिए मैंने अपने घर से ही प्रारम्भ किया है। इतना कह कर मैं कपड़े सजा कर रखने के लिए लेकर चलने लगा तो बापू ने रोका कि इन्हें यहीं रहने दो। जिनकी यह शंका है कि स्त्रियाँ अपने कपड़े जलाने को नहीं देंगी उनकी दूर कराने में ये मेरे बड़े काम आयेंगे।

तीसरा प्रकरण

१ अगस्त १९२० को लोकमान्य का स्वर्गवास हो गया। अंतिम दिन तक मैं उनके आस-पास काम करता रहा था। गांधी जी के साथ परिचय भी काफी बढ़ चुका था। दिसम्बर १९२० में नागपुर में कांग्रेस हुई जिसमें यह निश्चय किया गया कि देश को आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र और स्वावलंबी बनाने के हेतु से विदेशी वस्त्रों और माल का बहिष्कार किया जाय तथा हाथ-कताई और हाथ-बुनाई को प्रोत्साहन दिया जाय। इसकी योजना बनाने के लिए निष्णातों की एक समिति बुलायी गयी। १ अप्रैल १९२१ को यह ऐलान किया गया कि लोकमान्य की स्मृति के लिए एक करोड़ रुपयों का तिलक स्वराज्य फंड एकत्रित किया जाय तथा ३० जून, सन १९२१ तक बीस लाख चरखे देश में चालू कर दिये जायें। तिलक स्वराज्य फंड जमा करने में मैंने खूब काम किया था। कमायी खूब होती थी इसलिए हमारी पेढ़ी ने भी कुल मिला कर पैंतालीस हजार रुपये दिये थे।

बापू उस समय बंबई में रहते थे। उनका निवास श्री रेवा शंकर जगजीवनराम झवेरी के गामदेवी वाले बंगले 'मणि भुवन' में था। विलायती माल के बहिष्कार को सफल बनाने के लिए बापू दोहरा कार्यक्रम देश के समक्ष रख रहे थे। एक तो विलायती माल का उपयोग संपूर्णतया बंद होने तक व्यवस्थित आन्दोलन चलाना और दूसरा आवश्यक तमाम वस्तुवों का निर्माण देश में कराने की व्यवस्था करना-विशेषकर कपड़े की आवश्यकता हाथ कताई और हाथ-बुनाई की खादी से पूरी करना। चरखे चलाने के लिए पूनी का प्रश्न सामने आया। शुरू में मिल की पूनी काम में ली गयी। परन्तु उससे संतोष नहीं हुआ। देशी पिंजारों की ऊंची तांत की धुनकी उन्होंने बंगले में लगवायी। बापू खादीमय बनते जा रहे थे। अभी उनकी धोती मिल की थी। आश्रम में जो खादी बनती थी वह छोटे अर्ज की और मोटी थी। इसलिए ४५ अर्ज की खादी तैयार न होने तक उन्होंने छोटे

अर्ज का पंछा पहनने का जब निश्चय प्रकट किया तो गंगा बेन घबरा गयीं। एक महीने में ही उन्होंने महीन सूत कात कर ५०" अर्ज की पहली धोती बनवाकर बापू को अर्पित की।

उन दिनों देश का साठ करोड़ रुपया विलायती कपड़े के लिए परदेश जाता था। बापू की इच्छा थी कि ये रुपये देश में ही हाथ से काम आनेवालों के पास रहें। इसलिए आन्दोलन के साथ ही साथ बापू ने रचनात्मक प्रवृत्ति जगानी शुरू की। जब तक हाथ कताई और हाथ बुनाई की खादी तैयार हो तब तक विदेशी माल के बहिष्कार का काम रुका न रहे, इसलिए उन्होंने मुझे सलाह दी कि "तुम स्वदेशी रुई में से बने हुए मिल के कपड़े की दुकान करो जिसमें व्यवस्था खर्च पांच प्रतिशत लिया जाय। इसमें एक शर्त और कि मिल ऐसी होनी चाहिए जिसे देश के लोग देश की पूंजी से चलाते हों।"

मैंने ऐसी एक दूकान कालबादेवी जैसे सघन भाग में शुरू की। ग्राहकी जंचने लगी। बिक्री बढ़ी। करीब ६ महीने में गांधीजी का आदेश मिला कि "दूकान बन्द करो," अब खादी की दूकान करो।" मेरे लिए उनकी आज्ञा ही सब कुछ थी। दुकान बंद कर दी गयी।

११ वर्ष की नौकरी के बाद मैं स्वदेशी स्टोर से मुक्त हुआ था। १९१९ में कपड़े की एक पेढ़ी पर मैं हिस्सेदार बना था। जलियाँवाला बाग के हत्याकांड जाँच के लिए गांधी जी लाहौर गये हुए थे। वहाँ से उनका पत्र मिला कि साबरमती आश्रम में करीब दस हजार रुपये की खादी इकट्ठी हो गयी है। उनकी बिक्री करनी है। तुम इस काम को कर लो।" यह पत्र मिलते ही मैंने अपने हिस्सेदार से मसविरा किया। उन दिनों देशी—परदेशी कपड़े का ढाई तीन करोड़ रुपये का व्यापार हमारी पेढ़ी पर था। १९१४—१५ के युद्ध के दिनों में कपड़े के व्यापारियों ने गाढ़ी कमाई कर ली थी। कपड़े बेचना उन दिनों में सहज था। खादी भी कपड़ा तो है ही। अन्य कपड़े की तरह इसे भी बेच डालेंगे। ऐसी मशविरा अपने हिस्सेदार के साथ कर मैंने तार दे गांधीजी को सूचना दी कि दस हजार रुपये की खादी खरीद लेते हैं। मिल के सूत के ताने और हाथ से सूत के बाने से यह खादी बनी थी। अपने चालू तरीके के अनुसार कपड़े का नमूना बनाकर बँधी गांठें बेच डालने की मैंने कार्रवाई की। लेकिन इस तरीके से

खादी का कोई ग्राहक न मिला। करोड़ों रुपयों का कपड़ा मैं आसानी से बेचता रहता था। बिक्री शक्ति का मद मेरी रग रग में भरा था। लेकिन दस हजार रुपये की खादी ने मेरा वह मद उतार दिया। बल्कि यह कहें कि खत्म कर दिया। इससे कुछ परेशानी महसूस हुई। बापू को पंजाब में ही अपनी अशक्ति का अंगीकार करते हुए पत्र लिखा। इस विषय को पूरा समझने और समझाने के लिए उन्होंने मुझे कुछ सूचनाएँ दीं और कहा कि खादी बिक्री के लिए मुझे अलग ही व्यवस्था जमानी चाहिए।

कालबादेवी सड़क पर स्वदेशी मार्केट की एक गली में पन्द्रह रुपये मासिक भाड़े की एक दूकान लेकर वहाँ वह खादी सजा दी। धीरे-धीरे लोगों का ध्यान खादी की ओर मुड़ा। गांधीजी बम्बई आये और पहुँचते ही यह आदेश निकाला, "अब तो चर्खे के सूत के ताने और बाने की खादी तैयार होने लगी है, इसलिए मिल के सूत के तानेवाली खादी की बिक्री बंद करो।"

मेरे स्नेही श्री वल्लभदास रणछोड़दास विलायत की यात्रा से हाल ही में लौटे थे। उन्होंने गांधीजी से मिलने की इच्छा व्यक्त की। मैं उन्हें गांधीजी के पास ले गया। दर्शन करके बीस हजार रुपये का चैक उन्होंने गांधीजी के चरणों में रख दिया। गांधीजीने उनसे यह जानना चाहा कि इस रकम का उपयोग किस हेतु में होना चाहिए। श्री वल्लभदास ने यह बात गांधीजी पर ही छोड़ी, लेकिन इतना कहा कि अच्छा यह हो कि यह रकम खादी काम में उनकी जन्मभूमि काठियावाड़ में लगे।

तब काठियावाड़ में कहीं-कहीं चरखे चलते थे। चरखों को व्यवस्थित ढंग से चलवाने के लिए अमरेली में खादी उत्पादन का एक केन्द्र खोला गया। खादी काम के लिए प्राप्त पूंजी का यह प्रथम उपयोग था। पू. ठक्कर बापा ने यह काम अपने हाथ में ले लिया। उनकी मदद में सर्वेन्ट्स आफ इन्डिया सोसाइटीवाले श्री करशनदास चीनलिया बाद में शरीक हुए।

चौथा प्रकरण

खादी का पहले का स्वरूप उसके आज के स्वरूप से बहुत भिन्न था। उस समय की खादी का अवस्था देखें तो सब ४ अंक के सूत की '२४" अर्ज की खादी थी। काठियावाड़ में ऐसी खादी को 'वेजा' नाम से पुकारते थे। अमरेली और आस-पास के इलाके की ऐसी खादी के गोल लपेटे हुए थानों की गाँठे वंबई पहुचीं। उनका मूल्य तब गज के हिसाव से नहीं था। वल्कि वजन से प्रति मन के हिसाव से था। इन वेजों की गज के अनुसार कीमत निर्धारित करने के लिए थानों की गज के आकार की घड़ी करायी गयी। वजन के मूल्य को गजों मूल्य में परिणत कर लिया गया। फिर गांधीजी से पूछा गया कि आगे इसका क्या हो। उनकी सलाह के अनुसार खादी विक्री के लिए हिंदुस्तान में सवसे पहला खादी भंडार खोलना तय हुआ। इसके लिए पसंद की गयी दूकान का भाड़ा पंद्रह रुपये मासिक था। खादी का मूल्य चार आना गज था। ग्राहक तरह-तरह के कामों के लिए तरह-तरह की खादी माँगते थे। लेकिन तव तो खादी की एक ही जाति थी और उसी से उन्हें सब्र करना होता था। विना किसी प्रचार गांधीजी ने इ१ भण्डार का उदघाटन किया। उनसे हाथों से पहला थान एक वोहरा गृहस्थ से १०१ रुपये में खरीदा।

खादी की इस एक जाति में से टोपी, कुरता और पायजामा आदि तैयार हो जाते थे, लेकिन धोती साड़ी का सवाल लोगों को परेशान करता रहता था।

भण्डार की विक्री मासिक आठ सौ रुपये से लेकर हजार तक पहुँची थीं। स्वराज्य की लड़ाई दिन प्रति दिन जोर पकड़ती जा रही थी। खादी उत्पादन के लिए देश भर में कोशिशें की जा रही थीं। खादी प्रचार वड़े पैमाने पर क्यों कर हो, वम्वई के इस पहले खादी भंडार की विक्री कैसे वढ़े, यह चिन्ता गांधीजी कर रहे थे। जाने उन्हें एकाएक सूझा हो। इस तरह एक दिन उन्होंने

मुझसे पूछा, "खादी भण्डार की व्यवस्था तुम सम्हालते हो?" मैंने 'हाँ' कहा। फिर प्रश्न हुआ, "बिक्री पर तुम बैठते हो?" मैंने कहा 'नहीं'। यह सुनते ही वे बोले "तब तो तुमने एक सदाव्रत खोला है और दूसरे को उसे सौंप दिया, ऐसा ही हुआ न?" मैं शरमाया, सकुचाया और उनकी सलाह माँगी, "तो मुझे क्या करना चाहिए?" उन्होंने कहा, बिक्री करने का जो कितने ही वर्षों का अनुभव तुम्हारे पास है उसका लाभ खादी की बिक्री को मिलना चाहिए। इसलिए खादी भंडार में बिक्रीकार के स्थान पर तुम्हें बैठना चाहिए।" प्रति वर्ष करोड़ों रुपये के कपड़े का उलट-फेर मैं करता रहता था। इसलिए चार आने वार की यह खादी टुकड़े-टुकड़े फाड़ कर बेचना मुझे पसन्द नहीं आ रहा था। मेरे मन के हिचकिचाहट के ये भाव बापू ताड़ कर इस प्रकार बोले, "खादी का काम जो छोटा लगता है वह करोड़ों रुपये तक पहुँचनेवाला है और इसकी जवाबदारी तुम्हारे सिर पर रहनेवाली है।" बापू के इन शब्दों का अर्थ तब मैं ठीक तरह से नहीं समझ पाया था तो भी मैं उनके साथ कोई दलील न कर सका। अपनी मिल के कपड़े की दुकान पर जाकर अपने हिस्सेदार से ये बात कही। उनका उत्तर मिला "गांधीजी की आज्ञा का पालन करना चाहिए।"

इसलिए मिल के कपड़े की दुकान पर बैठना छोड़कर दूसरे दिन से मैं खादी भंडार में बैठने लगा। मेरे दिमाग में एक ही प्रश्न घूम रहा था कि खादी बिक्री कैसे बढ़ायी जाय। पिताजी से मैंने सीखा था कि बिक्री के लिए प्रचार कार्य अनिवार्य होता है। यह ज्ञान यहाँ उपयोग में आया। जो बिक्री मासिक आठ सौ रुपये या एक हजार रुपये की हुआ करती थी वह पहले ही महीने में आठ हजार रुपये की हुई। जिस माल को बाजार में खपाना हो उसका विज्ञापन करना पड़ता है तभी लोगों को उस माल का परिचय मिलता है। मेरी दाँत कान कुरेदनी की पुकार विज्ञापन कार्य की पहली सीढ़ी की तरह था। कन्धे पर या हाथ ठेले पर माल रख कर गली-गली में घूमकर फेरी करनेवाला कोई कम विज्ञापन नहीं करता। समाचार-पत्रों में अपने माल का विज्ञापन छपाना या मुख्य-मुख्य स्थानों पर अपने नाम और माल के रंगीन बोर्ड लगवाना, ये भी विज्ञापन की ही रीतियाँ हैं। सिनेमा-वाले पर्चे बाँट कर लोगों को सिनेमा की सूचना पहुँचाते हैं। रेडियो जोरों आवाज में बोलते रहते हैं, यह भी विज्ञापन की रीति है। इन तमाम रीतियों

का समावेश मेरा इस प्रकार में हो जाता है—'दाँत कुरेदनी, कान कुरेदनी दो-दो पैसे की।' इसलिए विज्ञापन कार्य हर एक धंधे के लिए एक आवश्यक कार्य बन जाता है। खादी विक्री बढ़ाने में भी विज्ञापन ने ही सहायता की।

खादी कार्य गांधीजी के लिए बड़े महत्व का था। राजकीय स्वराज प्राप्त करने का तो यह तीव्र हथियार था। उन्होंने एक पत्र में लिखा, "मैं खादी के पीछे पागल हूँ और मरते दम तक खादी पागल ही रहनेवाला हूँ। मैं चाहता हूँ कि सब मेरी तरह ही खादी पागल बन जायें। यह पागलपन यदि करोड़ों में फैल जावे तो समझना कि स्वराज अपने आंगन में पड़ा हुआ ही मिलेगा।"

चाहे जितने महत्व के कामों में वे फँसे हों लेकिन खादी के विषय में सूक्ष्म सूचना अपने पत्रों में लिखते रहने का समय वे निकाल ही लेते थे। एक बार मुझसे बोले, "इस समय तो एक ही प्रकार की मोटी खादी अपने पास है। इसमें से कितने प्रकार के तैयार कपड़े सिला कर रखें जा सकते हैं यह विचार कर लो। यदि विक्री के लिए तैयार कपड़े बनवा कर रखोगे तो लोगों को यह सरलता से मालूम हो जायगा कि खादी का उपयोग किस तरह किया जा सकता है।" उसी दिन से मैं तैयार कपड़े सिलवाने में लग गया। थोड़े ही दिनों में १०८ प्रकार के कपड़े भण्डार में सजा दिये गये। विक्री बढ़ाने में इस प्रयत्न से इच्छित फल मिला। खादी के तैयार कपड़ों ने खादी की विक्री का मार्ग ढूँढ़ निकाला। विलायती कपड़े की अपनी दूकान पर भी मैं शुरु से ही तैयार कपड़े रखता था।

कलकत्ते के पास हावड़ा में साप्ताहिक हाट लगा करती थी। उसमें तैयार कपड़े खूब विका करते थे। एक बार मैं वहीं से कुछ नमूने ले आया था। परन्तु वे नमूने बम्बई की जनता ने पसन्द नहीं किये। इसलिये मैंने यह जानना चाहा कि बम्बई की ढब के तैयार कपड़ों के नमूने कहाँ से प्राप्त किये जायें। विलायत के तैयार कपड़े बड़ी संख्या में आया करते थे। लेकिन उनकी लम्बाई तथा लम्बे आस्तीन लोगों की रुचि के अनुकूल नहीं होते थे। इसलिए अपने खुद के पहनने की कमीज के नमूने की कमीजें मैंने सिलवायीं। अलग अलग प्रकार की चार कमीजें सिल्वा कर और धुलवा कर विक्री के लिए ज्यों ही सजायी कि तुरन्त विक गयीं। फिर तो मैं बड़ी तादाद में तैयार कराने लगा और यह लाइन चमकने लगी। बम्बई

के को-आपरेटिव स्टोर में जब मैं दाखिल हुआ था तब वहाँ सिलाई विभाग में सिर्फ दो मशीनें थीं। जब मैंने स्टोर से अपना सम्बन्ध छोड़ा तब उस सिलाई विभाग में १२० मशीनें थीं जिसमें से तीस मशीनें बिजली से चलायी जाती थीं।

इस अनुभव के आधार पर खादी भण्डार में सिलाई विभाग खोला। खादी व्रतधारी नौकरी पेशा लोगों को सिले हुए कपड़े लेना बड़ा अनुकूल था। हर एक वेतन में से एकाध कमीज या कुर्ता खरीद लेना उन्हें सुगम पड़ता था। सिलाई विभाग में शुरू के दिनों में केवल वही खादी खपायी जाती थी जो बिकने से रह जाती थी। इसलिए तैयार कपड़ों की बिक्री सीमित ही रही। बाद में खादी की चालू प्रकारों में से जब तैयार कपड़े बनवाये जाने लगे तब तैयार माल विभाग की बिक्री खूब चमकी। ग्राहक भी खुशी से माल खरीदते थे।

खादी खपत में तैयार कपड़ों का स्थान महत्व का रहा है। बम्बई में भण्डार प्रति वर्ष चार लाख रुपयों तक के तैयार कपड़े बेचते हैं। दिल्ली में भी तैयार कपड़ों का उठाव अच्छा रहा है। वहाँ शहर के दर्जी बड़े मंहगे और बड़े ही अनियमित हैं, इसलिए अच्छे अच्छे दर्जे के लोग भी तैयार कपड़े ले लेना पसन्द करते हैं। अभी दिल्ली के खादी भवन में तैयार माल विभाग शुरू हुए सिर्फ तीन महीने ही हुए हैं, तो भी इतने अल्पकाल में ही इस विभाग की बिक्री छियासठ हजार रुपयों की हो चुकी है। राजकोट खादी भवन का तैयार माल विभाग बहुत ही व्यवस्थित है। उससे भण्डार की बिक्री में पूरी-पूरी मदद मिलना सम्भव है।

पाँचवा प्रकरण

मैं खादी भंडार में बैठने लगा सही लेकिन अभी मेरा निर्वाह परदेशी कपड़े की दुकान के हिस्से से ही चलता था। खादी भंडार को दुकान का ही एक अंश मान कर मैं उसमें काम कर रहा था। दूसरे भागीदारों के साथ मेरा तीन वर्ष का इकरारनामा था। दुकान में से प्रति मास पाँच सौ रुपये तक घर खर्च के लिए लेने की इकरारनामें में व्यवस्था थी। प्रति वर्ष के दुकानका हानि–लाभ का लेन–देन तीसरे वर्ष के अन्त में होनेवाला था। इस इकरारनामें के दो वर्ष बीत चुके थे। अभी एक वर्ष और शेष था। एकबार एकाएक गांधीजी ने मुझसे पूछा, "तुम्हारी भागीदारी का क्या हुआ?" जब मैंने उत्तर में यह बतलाया कि भागीदारी चालू है और उसी भागीदारी के अन्तर्गत मैं खादी भंडार चला रहा हूँ तो उन्हें बड़ा दुख हुआ। उनसे यह सहन नहीं हुआ और बोले, "जेराजाणी, क्या तुम अब भी मिल के कपड़े की दुकान की कमाई ही खाते हो? तुम्हें इसका त्याग करना चाहिए। विचार करके उत्तर देना।" मैं जरा घबराया और भागीदारों तक बात पहुँचायी। उनके पास भी इस समस्या का कोई हल दिखाई नहीं दिया।

तारीख ४ नवम्बर, १९२१ को दिल्ली में आल इन्डिया कांग्रेस कमेटी की बैठक होनेवाली थी। मैं भी उस समय इस कमेटी का एक सदस्य था। मैंने अपने मन में यह तय किया कि मैं दिल्ली तक गांधीजी के साथ ही रेल–यात्रा करूँ और उनके साथ बातें करके अपना भविष्य का मार्ग निश्चित करूँ। शुरू में मैं अलग डिब्बे में बैठा था लेकिन रास्ते में ही उनके पास जा पहुँचा। बड़ी देर तक वे मेरी बातें सुनते रहे। पर उन्होंने बारम्बार इसी बात पर जोर दिया कि मुझे मिलों के कपड़े की कमाई कैसे भी छोड़नी ही चाहिए। यह भी उन्होंने आज्ञा दी कि बम्बई में अपने भागीदार के साथ में उनसे फिर मिलूँ। इसलिए दिल्ली

से लौटते ही मैं अपने भागीदार को साथ लेकर 'मणि भुवन' में गांधीजी से मिलने गया।

वे हमें लेकर बंगले के एक एकान्त भाग में बैठे। मेरे भागीदार के साथ बातचीत में उन्होंने कहा "मैंने वकालत छोड़ने की शुरुआत दास बाबू तथा मोतीलालजी से करायी। मिलों के कपड़ों का व्यापार छुड़वाने का मुहूर्त कराना है। इस निमित्त के लिए आप जेराजाणी को मुक्त करें।" मेरे भागीदार और मैं उनकी ओर निहारते रह गये। महात्मा का आदेश पालन करना या पचा लेना कठिन था। तो भी मेरे भागीदार ने उत्तर में कह दिया कि गांधी जी की आज्ञा उन्हें शिरोधार्य है। यह निर्णय सुनते ही गांधीजी तत्परता से बैठ गये। केवल पाँच मिनटों में ही सारी घटना हो गयी। मारे व्यापार में सट्टे का अंश काफी मात्रा में था। 'लिया' और 'दिया' इन दो शब्दों से ही हम बड़ी-बड़ी रकमों के उल्ट-फेर कर डालते थे। उतनी ही शीघ्रता से यह बड़ा उल्ट-फेर भी हो गया यानी पाँच मिनटों में ही मेरा भी सौदा हो गया। मेरा चिन्ता का पार नहीं था। घर खर्च के लिए पाँच सौ रुपये जो लाता था वे खर्च हो जाया करते थे। अंतिम हिसाब तीन वर्ष के अन्त में ही होनेवाला था। इसलिए यह बीच के एक वर्ष की परिस्थिति बहुत ही विकट लग रही थी।

इस ओर सारे देश में सविनय कानून भंग का नाद गूँज रहा था। उसके सैनिक के लिए खादी के वस्त्र पहनना अनिवार्य था। खादी की उत्पत्ति बढ़ाना और व्यवस्थित करना यह आन्दोलन का ही एक पहलू था। लड़ाई के जोश ने खादी कार्य को वेग प्रदान किया। मुझे भी इसमें अपना भाग अर्पण करना था ही।

इतने में १९२२ के मार्च में सरकार ने सबसे पहले गांधीजी को ६ वर्ष के कारावास की सजा दी। साबरमती जेल से उनका यह सन्देश मुझे मिला, "भागीदारी प्रकरण का अंतिम फैसला करने के बाद मुझसे मिल जाना।" मैं कुछ अकेला तो अंतिम निर्णय नहीं कर सकता था। निर्णय तो भागीदार से प्राप्त करना था। भागीदार ने कहा कि दो वर्षों में जो रकम घर खर्च के लिए मैंने ली है वह मेरी हो चुकी; लेकिन घटी नफे का फैसला तो तीसरा वर्ष पूरा होने पर ही हो सकेगा। तो भी घटी नफा का अपना हक छोड़ कर मैं मुक्त होना चाहूँ तो हो सकता हूँ। प्रथम वर्ष के अन्त में मेरे खाते में नफे के करीब लाख रुपये जमा हुए थे, दूसरे वर्ष का हिसाब अभी हुआ नहीं था। इस नफे की लालच

कुछ कम न थी। मैं गांधीजी की का उपरोक्त संदेश पाकर विचार शून्य सा बन गया। मुझे स्वयं कोई हल दिखता ही न था। ऐसी दशा में मैं साबरमती जेल में बापू से मिलने चला गया। उन्हें भागीदार की कही हुई बात सुनायी। वे बोले "भागीदार की ये शर्तें बिल्कुल वाजिब हैं। इन्हीं तुम्हें शर्तों पर भागीदारी में से मुक्त हो जाना चाहिए।" मैं यह कल्पना भी नही कर रहा था कि बापू इन शर्तों को वाजिब समझेंगे। मुझे ऐसा लगा मानों आसमान ही मुझ पर टूट पड़ने-वाला हो। मासिक पाँच सौ रुपये का खर्च कहाँ से पूरा करूँगा, यह सवाल परेशान किये हुए था। मुझे रोना आ गया। बापू ने सलाह दी कि मुझे अपनी पत्नी के साथ तीन महीने तक साबरमती आश्रम में रहने आना चाहिए और यहाँ पर मगनलाल गांधी जो काम बतायें वह करना चाहिए। इसके बाद घर खर्च के लिए सेठ जमनालालजी बजाज के साथ बात कर ली जाय।

इस सलाह के अनुसार मैं अपनी पत्नी के साथ आश्रम में पहुँचा। रहने के लिए एक कमरा मिला। तीन महीने का हमारा खर्च बिना मकान भाड़े के १२० रुपया आया। इससे यह विश्वास मन में पैदा हुआ कि मात्र चालीस रुपये मासिक से हमारा जीवन निर्वाह हो सकेगा। तीन महीने के अन्त में यह समझ में आया कि यही बात दर्शाने के लिए हम दोनों को तीन मास के लिए आश्रम में भेजने की योजना बापू ने की थी। इससे परेशान करनेवाले प्रश्न का हल मिल गया, हिम्मत आ गयी। बम्बई जा कर मैंने अपने भागीदार को मुझे मुक्त करने की शर्तों की स्वीकृति दे दी। नुकसान मुनाफ़े की जवाबदारी से मुक्त हुआ।

इन दिनों मेरे बड़े और छोटे भाइयों का परिवार हमारे साथ ही रहता था। छोटे भाई मस्कत से आ पहुँचे थे और बड़े भाई अमेरिका से आ गये थे। हमारे दो किराये के मकान थे। एक बम्बई में और दूसरा बोरीवली में। तीनों भाइयों ने मिलकर विचार किया। कुटुम्ब की जवाबदारियों से मुक्त किये जाने की मैंने माँग की। बड़े भाई ने बम्बई में रहना पसन्द किया और छोटे भाई ने बोरीवली में। छोटे भाई के निमंत्रण से मैं उसी के साथ रहनेवाला था। ऐसा कर लेने से मेरे घर खर्च का प्रश्न कभी उठा ही नहीं। इस प्रकार मैंने कमाई करने का धंधा छोड़ दिया और अपने आपको पूरी तरह खादी कार्य में डाल दिया।

खादी भंडार के काम में भाई रतिलाल मनमोहनदास की मदद मुझे खूब मिली है। उन्होंने इस काम में भी कभी मेरा साथ नहीं छोड़ा। बिक्री पर दृष्टि केन्द्रित की थी। इन्होंने अपने करतब से खादी-कार्य को समूचे रूप में वेग दिया। वे खादी पर रंगाई और छपाई करने के पहलू पर ही जोर देनेवाले थे। खादी में आने के पहले इनका धंधा ही विलायती कपड़ों की साड़ियाँ छाप-छाप के बेचने का था। बाद में यही काम स्वदेशी कपड़े की साड़ियों पर उन्होंने किया। चरखा संघ की स्थापना के बाद उन्होंने संघ के प्रमाणपत्र प्राप्त करके विठ्ठलभाई पटेल मार्ग पर खादी प्रिन्टिंग व डाइंग वर्क्स नाम की दुकान खोली। वे स्वयं कारीगर थे। इसलिए काम बढ़ा। इस काम में उनको १२,००० रुपये का नफा हुआ। लेकिन चूंकि यह खादी में से हुआ था, इसलिए उस पर अपना हक रखने से उन्होंने इन्कार किया। भविष्य में कभी कभी नफे पर मन न टिग जाय, इस हेतु उन्होंने अपनी दुकान की व्यवस्था एक रजिस्टर्ड शुदा ट्रस्ट को सौंप दी। उसमें ऐसी व्यवस्था रखी गयी कि नफे का उपयोग केवल खादी कार्य में ही हो।

सच कहा जाय तो यह रकम उनको अपनी कारीगरी और हुनर के प्रताप से प्राप्त हुई थी। रंगाई और छपाई की उनकी योग्यता का यह परिणाम था। इसलिए इस लाभ का वैयक्तिक उपयोग कर लेने का उन्हें पूरा हक था। उनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही सामान्य थी। अपनी जिन्दगी में उन्होंने इतना नफा पहली बार ही कमाया था। यह सब होते हुए भी खादी-प्रेम और त्याग की भावना से प्रेरित हो कर उन्होंने यह रकम खादी-कार्य के लिए नामांकित कर दी। खादी में सूत चलन लागू होने पर उनकी बिक्री घट गयी और उनका काम रुक गया। तब वे बम्बई छोड़कर अपनी जन्म-भूमि कहुवा (सौराष्ट्र) चले गये और अपने ज्ञान और अनुभव का लाभ सौराष्ट्र के खादी काम को देने लगे।

छठा प्रकरण

सन् १९२१ में कांग्रेस का आर्थिक विराट अधिवेशन अहमदबाद में हुआ। उसके साथ सबसे पहली खादी प्रदर्शिनी संयोजित की गयी। कांग्रेस के अधिवेशन के मंडपों तथा प्रतिनिधियों के निवासों में मुख्यतया खादी का ही उपयोग किया गया था, इस हद तक कि कांग्रेस के अधिवेशन खादी नगर की संज्ञा दी गयी थी। अधिवेशन पूरा होने पर यह सब खादी बिक्री के लिए निकाली गयी। कुछ भाग इसमें से बिक गया। जो शेप रहा उसकी बिक्री के लिए श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम आसर की देख-रेख में अहमदाबाद का प्रथम खादी भंडार खोला गया। कुछ समय में यह भंडार बंद हो गया और बाकी बची हुई खादी सेठ जमनालाल जी बजाज ने खरीद ली और उसकी बिक्री के लिये बंबई में एक नया भंडार खोला गया। इस भंडार का संचालन श्री हरजीवन मनजी कोटक को सौंपा गया। हमारी व्यवस्था वाले खादी भंडार के साथ इस भंडार ने कुछ प्रतिस्पर्धा की थी। मुझे प्रतिस्पर्धा की भावना ने दुख पहुँचाया। इस परिस्थिति में से मार्ग निकाल देने की मैंने कोशिश की। गाँवों में जाकर खादी कार्य करने की इच्छा एक लंबे अर्से से मन में सोयी पड़ी थी। यह इच्छा एकाएक जागृत हो गयी और दोनों भंडारों को एक सूत्र में सम्मिलित करके उनकी व्यवस्था श्री कोटक को सौंपने की योजना मैंने उनके समक्ष रखी। श्री कोटक शक्ति और योग्यतावाले व्यक्ति थे। उनकी संगति मैंने प्राप्त कर ली। तब इस आशय का एक इकरारनामा बना कर हम दोनों ने उस पर हस्ताक्षर किये और इसके बाद मैंने गांधीजी को इसकी खबर दी। एकीकरण का विचार गांधीजी को पसन्द आया लेकिन संचालक के लिए उन्होंने यह तय किया कि एकत्रित भंडारों का संचालक मैं रहूँ और श्री कोटक मुक्त हो जावें। हम दोनो ही इस निर्णय से निराश हुए और दुबारा गांधीजी को लिखा गया। उनका यह उत्तर मिला – "बंबई की जनता जेराजाणी के हाथ में रही है। कोटक

अभी नये हैं, इसलिए जेराजाणी ही भंडारों का संचालन करें।" इस आधार पर दोनों भंडारों का एकीकरण हो गया।

खादी भण्डार की व्यवस्था के अन्तर्गत खादी की बिक्री के भाव खादी भण्डार में पहुँचने तक की लागत दर तथा उस पर एक आना रुपया व्यवस्था खर्च के लिए चढ़ाने की रीति तय हुई थी। मेरी व्यवस्था के भण्डार में इससे वर्ष के अन्त में आठ हजार रुपये की हानि निकली। यह आकस्मिक हानि थी। उत्पत्ति केन्द्र कोरी खादी बम्बई भेजा करते थे और हम लोग उसे धुलवाया करते थे। कोरी खादी धुलने पर प्रति दस गज में बारह गिरह घट जाती थी। इसी प्रकार बिक्री भाव नियत कर लिये गये थे। एक ग्राहक को मैंने आन्ध्र की खादी बेची। पूरा थान बेचा था। उस समय मैंने देखा कि आन्ध्र की खादी का दस गज का थान आधा गज घट गया। बस हानि का कारण समझ में आ गया। लेकिन आठ हजार रुपये की हानि का करना क्या यह परेशानी तो रही। एक बार गांधीजी से मिलने का अवसर आया। तब उन्होंने उत्तर दिया, "यह हानि तुम्हीं उठा लो। जब चरखा संघ तुम्हारे भण्डार को लेगा तब यदि कोई नफा निकला तो उसमें से ये आठ हजार रुपये कम कर दिये जायेंगे।" मुझे कुछ आश्वासन मिला। मैंने यह विकल्प सूचित किया कि बम्बई भण्डार में मेरे वैयक्तिक आठ हजार रुपये अमानत रूप में जमा हैं वे मुझे वापिस मिल जायें तो मैं उसी रकम में से यह हानि चुका दूँगा। लेकिन गांधीजी ने कहा, "अमानत के रुपये जमा रहने दो और हानि की रकम अलग से भर दो।"

मुझे लगा कि अब इसमें तब्दीली करा सकने की गुंजाइश नहीं मालूम होती। तो मैंने अपने छोटे भाई से आठ हजार रुपये मँगा कर जमा कर दिये। लेकिन कुछ समय बाद जब चरखा संघ ने भंडार का चार्ज लिया तब उसमें नफा निकला, उसमें से आठ हजार रुपये मुझे वापिस मिल गये और तब मैंने अपने छोटे भाई को यह रकम तथा भंडार की पूंजी की रकम जो मैंने उनसे ले रक्खी थी, वापिस की।

सातवाँ प्रकरण

खादी व्रत पालन के लिए भी मुझे कई प्रयोग करने पड़े। मिल की ४॥ गज लम्बी ५०" अर्ज की धोतियाँ पहना करता था। खादी में से ऐसी ऐसी धोती बना लेने का प्रश्न सामने आया। छोटे अर्ज की खादी के दो पाटों को सिलवा कर मैंने एक धोती अपने लिए तैयार कराई। यह धोती खूब भारी बनी। मुझे शंका हुई कि इसे पहना भी जा सकेगा या नहीं। यह तय किया कि पहले घर के अन्दर उसे पहनने की आदत डाल लेनी चाहिए। पहले-पहले तो उस धोती की लम्बाई, चौड़ाई और मोटापन जरा भी अनुकूल नहीं लगा। इसलिए लम्बाई, घटा कर ४ गज की और अर्ज घटाकर ४४" किया। लेकिन फिर भी धोती इतनी मोटी रही कि उसे कमर में लपेटना कठिन लगा। एक सप्ताह उसी तरह पहनता रहा। मोटी खादी ही के कारण पेट में दर्द हो गया था और रानें छिलने लगी थीं। इन्हीं दिनों में श्री लक्ष्मीदास आसर अपना कालीकट का व्यापार बंद करके साबरमती आश्रम में रहने आये। वे अपने साथ एक १०-१२ अंक के सूत की धोती लाये थे। वह धोती जब उन्होंने मुझे दी तो मुझे अपार हर्ष हुआ। इसके बाद तिरुपुर तथा दक्षिण के अन्य केन्द्रों में से वैसी धोतियाँ बम्बई भंडार में मँगा कर बेचना शुरू किया। इसी पोत की पाँच गजी साड़ियाँ भी बुनवाने का उसी क्षेत्र में प्रबन्ध कराया गया। महिलाएँ इन साड़ियों को मोटी होने के कारण लेने और पहनने में हिचकती रहीं तो भी कई महिलाओं ने ये साड़ियाँ खरीद कर पहनना शुरू किया।

देश के भिन्न-भिन्न भागों में चरखे को पुनर्जीवित किया जा रहा था। कताई जिसे भुला दिया गया था, फिर से शुरू की जाने लगी थी। इसलिए खादी में कुछ विविधता आने लगी और इस कारण उसकी मांग बढ़ने लगी। खादी मोटी खुरदरी है और मिल के कपड़े से उसके भाव भी ऊँचे हैं ऐसा तो हर समय लोग सुनते ही रहते थे, लेकिन वह स्वराज्य सेना की वर्दी थी इसलिए अधिक दाम देकर भी भावनाशील लोग उसे खरीदने लगे थे। पन्द्रह रुपये

मासिक भाड़ेवाली दुकान अब छोटी पड़ने लगी थी। इसलिए बम्बई की प्रिन्सेस स्ट्रीट पर एक बड़ी दूकान में भंडार को ले गये।

बापू जेल में बन्द हो गये थे, इधर खादी-कार्य में कुछ कमी की लहर आ रही थी, लेकिन इस काम को व्यवस्थित ढंग से चलाते रहना हम सबका कर्तव्य था। इसलिए सारे देश में खादी काम में पूरा समय और ध्यान देनेवाले अनेक योग्य व्यक्ति काम में जुट गये। गांधीजी का जन्म दिन निकट आ रहा था। उसे उत्साह और प्रेम से मनाने की योजना विचाराधीन थी। बापू का आदेश मिला, " मेरा नहीं, चरखे का जन्म दिन मनाया जाय"। सन् १९२३ की गांधी जयन्ती को चर्खा जयन्ती या चर्खा द्वादशी का नाम मिला और फिर वही नाम प्रचलित हो गया। बाद में आश्विन वदी १२ से लेकर दूसरी अक्तूबर तक के दिनों में चर्खा सप्ताह मनाया जाने लगा। इस सप्ताह में खादी के प्रचार की धूम मच जाती थी।

पहले देश भर का खादी-कार्य कांग्रेस कार्य समिति द्वारा संचालित होता था। सन् १९२२ के मई मास में कांग्रेस के अन्तर्गत खादी विभाग बना दिया गया और इस विभाग के संचालन का काम सेठ जमनालाल बजाज को सौंपा गया। खादी विभाग और शिक्षण विभाग का काम श्री मगनलाल गांधी के आधीन रखा गया। उत्पत्ति विभाग श्री लक्ष्मीदास आसर को और बिक्री विभाग मुझे सौंपा गया। विभिन्न प्रान्तीय कांग्रेस समितियों ने खादी काम में कुल साढ़े तेरह लाख रुपये लगाये थे। फिर १९२१ से १९२३ तक कांग्रेस ने खादी काम में अधिकाधिक रकम लगा कर कुल २३ लाख रुपया लगा दिया था। खादी शिक्षण का काम व्यवस्थित ढंग से होने लगा था और योग्य खादी कार्यकर्ता तैयार होने लगे थे। बुनाई केन्द्रों को अधिक मदद द्वारा जमाया जा रहा था। सन् १९२३ में करीब ११ लाख की खादी-बिक्री देश भर में हुई थी।

बम्बई का भंडार मेरी व्यवस्था में था। उसकी बिक्री बढ़ाने के लिए मुझे अधिक पूंजी की जरूरत हुई। बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस समिति ने एकाध लाख रुपये देने की तत्परता दिखायी। साठेक हजार रुपये दे दिये। परन्तु व्यवस्था में उनके दो सदस्य लेने की बात उठाई गयी। मैं खादी भंडार का एकाकी संचालक रहा था। मुझे उनका दखल पसंद नहीं था

इसलिए मैंने शर्त का रूप कुछ बदल कर ऐसा कर दिया कि खादी भंडार के संचालन में कांग्रेस कमेटी के सदस्यों को स्थान मिले अथवा कमेटी की साठ हजार रुपये की रकम भंडार उसे वापिस कर दे । मेरा यह सुधार पसन्द आया । मेरी यह दृढ़ मान्यता थी कि बापू जेल में से छूट कर आवें तब तक भंडार का संचालन व्यवस्थित ढंग से बिना किसी बाहरी दखल के होते रहना चाहिए । फिर बाहरी दखल को टालने के लिए बम्बई प्रदेश कांग्रेस कमेटी को उसकी साठ हजार रुपयें की रकम वापिस कर देनी चाहिए। यह कैसे चुकाया जाय इसका उपाय मैं करने लगा ।

मेरे छोटे भाई मस्कत में व्यापार करते थे । उनको मैंने भंडार की परिस्थिति लिखी और सुविधा हो तो रकम भेजने को भी लिखा । वहाँ से मुझे उतनी रकम तुरन्त ही मिल गयी जिससे मैं कांग्रेस कमेटी की रकम लौटा सका ।

कांग्रेस में उस समय विभिन्न भागों में अनेक दल अपना–अपना संगठन रखते थे । मैं कई वर्षों से 'सी' वार्ड की ओर से अ. भा. कांग्रेस कमेटी का सदस्य चुना जाता रहा था । इसके लिए मुझे एक न एक दल का सहारा प्राप्त करना होता था । हाल में ही वैसा एक चुनाव होनेवाला था और मुझे यह तय कर लेना था कि इस बार मुझे उस सदस्यता की उम्मेदवारी करनी चाहिए या नहीं । यह बहुत जरूरी था कि खादी कार्य किसी विशेष दल से संबद्ध न हो जावे । इसी विचार से मैंने इस बार अपनी उम्मेदवारी रोक ली । इसका परिणाम यह हुआ कि खादी भंडार सभी दलों का समान रूप से रह सका ।

पूना के पास यरवडा जेल में गांधी जी थे । वहाँ उनके पेट में जोर का दर्द उठा । इसलिए पूना के सासून अस्पताल में ता० १२–१–१९२४ को उनके पेट का आपरेशन हुआ। मुलाकात की सुविधा रखी गई थी । इसलिए मैं उनसे मिलने गया । उनका सबसे पहले प्रश्न बम्बई के खादी भंडार के विषय में हुआ । मैंने सब हाल बताया । सुनकर उन्हें संतोष हुआ और उनका सन्तोष ही मेरा सन्तोष था । आपरेशन से स्वस्थ होते ही, सजा पूरी होने के पहले ही, सरकार ने उन्हें ता. ५–२–२४ को मुक्त कर दिया । मुक्त हो कर कुछ विश्राम लिया और फिर से वे प्रजा को सबल बनाने के काम में जुट गये।

गाँधीजी की इच्छा थी कि कांग्रेस केवल रचनात्मक कार्यों में ही पूरी शक्ति लगा कर प्रजा को तैयार करे। सन् १९२४ के जून मास की एक सभा में कांग्रेस ने यह निश्चय किया कि उसके हर एक सदस्य को सूत कातना जरूरी है। कांग्रेस सदस्यता का चंदा भी सूत की लच्छी के रुप ही में लेना तय किया। हर एक व्यक्ति चर्खे का शास्त्र जाने और उस पर अमल करे, ऐसे प्रयत्न किये गये। सरकार के साथ लड़ाई का काम मन्द पड़ गया था और रचनात्मक काम में वेग आ गया था। खादी की उत्पत्ति खूब बढ़ रही थी। उसकी बिक्री को साथ-ही-साथ बढ़ाते रहने का काम कठिन था। सन् १९२४ के सितम्बर मास में बम्बई खादी भण्डार अखिल भारत खादी मण्डल ने ले लिया। भण्डार के सम्बन्ध की आर्थिक जवाबदारी मेरी नहीं रही, लेकिन नैतिक जवाबदारी और भी बढ़ गयी।

जब से बम्बई भंडार की स्थापना हुई थी तभी से बापू भंडार की छोटी-छोटी बातों को भी ध्यान में लेकर सलाह मशविरा देते ही रहते थे और संचालन से पूरी तरह जानकार भी रहते थे। सन् १९२१ से भंडार ने यह नियम-सा बना लिया था कि भंडार की बिक्री के मासिक अंक गत वर्ष के उसी मास के तुलनात्मक अंकों के साथ बापू को भेजा जाय। यह नियम बापू की जिन्दगी तक बिना टूटे चलता रहा। चाहे वे जेल में हों, चाहे गोलमेजी परिषद् में विलायत गये हुए हों, भंडार की मासिक बिक्री की रिपोर्ट तो उनके पास पहुंचती ही थी। एक बार वे लाहौर में थे, वहाँ उन्हें बिक्री के अंक मिले। उस मास की बिक्री गत वर्ष के उसी मास की बिक्री से कुछ कम थी। मेरा दिल इससे काफी मुरझा रहा था। बापू मानों इतनी दूरी से भी मेरी स्थिति को भांप गये हों, इसलिए उन्होंने ता. ९-१०-२५ के एक पोस्टकार्ड में ये शब्द अपने लाक्षणिक ढंग से अपने ही हाथ से लिखा—"तुम्हारे भेजे हुए अंक मिला करते हैं। कभी नहीं हारना भावे साथी जान जावे।" ठीक धन तेरस के दिन वह पोस्टकार्ड मेरे हाथों में आया। व्यापारियों का सरस्वती पूजन का वह दिन था। मैंने उस पूजा में उस पोस्टकार्ड का भावपूर्वक स्तवन किया और "कभी नहीं हारना" का जो मंत्र बापू ने लिख भेजा था उसे अपना जीवन-मंत्र बना लिया। खादी की बिक्री करते-करते खादी के इतिहास में अनेक कसौटी के प्रसंग उपस्थित होते रहे हैं और मैंने सदा ऐसे प्रसंगों पर इस मंत्र से बल प्राप्त किया है।

आठवाँ प्रकरण

दिसम्बर सन् १९२४ में कांग्रेस का अधिवेशन बेलगाम में हुआ था। उसके अध्यक्ष गांधी जी थे। उस अधिवेशन में यह निश्चय किया गया था कि कांग्रेस केवल रचनात्मक कार्यों को करे और धारा सभाओं में जाने आदि राजनैतिक काम स्वराज्य दल किया करे। इसके विपरीत सन् १९२५ के सितम्बर मास में पटने में कांग्रेस महा समिति ने यह निश्चय किया कि कांग्रेस तो राजनैतिक कामों पर ही ध्यान दे और रचनात्मक कामों के लिए अलग संस्था बना दे।

सन् १९२३ में कांग्रेस कार्य समिति ने कोकोनाडा में अपने एक विभाग के तौर पर अखिल भारत खादी मंडल की रचना की थी। इस मंडल के द्वारा खादी-कार्य को उचित वेग न मिल सका, क्योंकि कांग्रेस समितियों को ऐसे कामों की बनिस्वत राजनैतिक कामों में ही ज्यादा रस मिलता था और यह स्वाभाविक भी था। इससे जब कभी राजनैतिक मुद्दा सामने हो तब रचनात्मक काम पर से ध्यान खिंच जाता था। रचनात्मक कामों को तो सतत ध्यान मिलना जरूरी था। इसलिए वे काम या तो रुक जाते थे या धीमे चलते थे। इसलिए महसूस हुआ कि इन कामों के लिए अलग संस्था हो तो इनका ठीक ढंग से विकास कर सकें। इस खयाल से पटने में उपरोक्त प्रस्ताव होने के दूसरे ही दिन अखिल भारत चर्खा संघ की स्थापना करने का विचार करने के लिए तमाम उपस्थित खादी प्रेमियों की एक सभा की गयी। सभी में चर्चा होने के बाद संघ का विधान तैयार हुआ। कांग्रेस कार्य समिति की इच्छानुसार गांधी जी ने इस नई संस्था का अध्यक्ष पद स्वीकार किया। पंडित जवाहरलाल नेहरू, श्री शंकरलाल बैंकर तथा श्री शुयेब कुरेशी ये तीन संस्था के सहमंत्री बने। कांग्रेस ने देश का कुल खादी काम और उसकी आर्थिक लेन-देन इस नई संस्था अर्थात् अखिल भारत चर्खा संघ को सौंप दिये। यह स्पष्ट कर लिया गया कि संघ कांग्रेस संगठन के अन्तर्गत रहता हुआ स्वतंत्र रीति से खादी कार्य करेगा। इस काम की पूंजी के लिए खादी के निमित्त के सारे दान तथा तिलक स्वराज्य फंड की खादी में लगी हुई कुल रकम संघ को दे दी गई।

देश भर के खादी कार्यकर्ता साबरमती आश्रम में एकत्रित हुए। खादी का विस्तार करने के लिए जो २२ लाख रुपये की रकम संघ को प्राप्त हुई उसके उपयोग करने की योजनाओं पर विचार किया गया। बम्बई के खादी काम के लिए मेरी दो लाख रुपये की योजना भी उसी समय स्वीकृत हुई। इसमें दो शर्तें रखी गई थीं। एक तो यह कि जैसे जरूरत पड़ेगी वैसे–वैसे दो लाख रुपये तक की रकम बम्बई भंडार को दी जायेगी और किसी भी समय जो रकम भंडार में लग रही हो उसकी कम–से–कम दूनी बिक्री होनी चाहिए। मेरी ओर से भंडार में जो सात हजार रुपये लग रहे थे जमानत के तौर पर लगाये रखना तय हुआ। भंडार इस रकम पर ६ प्रतिशत सैकड़े का ब्याज मुझे देता है।

दूसरी शर्त यह थी कि वर्ष के अन्त में यदि भंडार में हानि निकले तो चर्खा संघ बिक्री पर दो प्रतिशत तक मदद दे। उससे अधिक हानि की जिम्मेदारी मेरी रक्खी गई।

ये दोनों शर्तें बहुत कड़ी थीं। इन्हें कुछ ढीला कराने के लिए बापू से प्रार्थना की। उन्होंने मुझे समझाया कि देश भर में खादी–केन्द्रों और भंडारों में रकमें लगानी होंगी। बहुत स्थानों से रकम की माँग की जावेगी। जो शर्तें बम्बई भंडार के साथ रक्खी गई हैं वहाँ दूसरों के साथ भी रक्खी जावेंगी। पूंजी लगाते समय ऐसी स्पष्ट शर्तें रखना इष्ट भी होता है। बापू के समझाने के बाद ये कड़ी शर्तें भी मैंने मान ली।

नवाँ प्रकरण

जिन प्रदेशों में खादी कार्य चल रहा था उसे बढ़ाने तथा जिन प्रदेशों में चरखे नहीं चलते थे वहाँ नये सिरे से चलाने की योजनाओं पर विचार होता रहता था। रुई मौसम में खरीद कर उसका संग्रह कर रखने की व्यवस्था की गयी। खादी उत्पादन बढ़ाने के लिए २ प्रति सैकड़े की मदद देना स्वीकार किया गया। फेरी द्वारा खादी बिक्री करनेवालों को कमीशन देने की योजना अमल में लाई गई। कभी माल इकट्ठा हो जाये तो उसकी बिक्री करा देने का भार बम्बई भंडार के अन्तर्गत मेरे सिर पर रहा। खादी विषयक सर्वोत्तम निबंध लिखने के लिए पारितोषिक की घोषणा की गयी। दूसरा खादी साहित्य तैयार कराने का काम शिक्षण विभाग को सौंपा गया। खादी की जातें और उसकी पोत सुधारने की ओर संघ ने विशेष ध्यान दिया।

अपने काम में मैंने हमेशा बापू को सर्वोपरि माना है। जरा भी उलझन मालूम हुई की ध्यान तुरन्त बापू की ओर चली जाती थी। वे मेरी गुत्थी सुलझा दिया करते थे। मुझे ऐसा लगा करता था कि बम्बई अपनी जवाबदारी पूरी तरह अदा नहीं करता। देश भर में कहीं भी खादी का जत्था बिना बिका रुक गया हो तो मुझे तुरन्त उस माल को मँगा कर वहाँ का कष्ट निवारण करना चाहिए, इस कर्तव्य की याद मुझे सदा रहा करती थी। इसलिए जब कभी मैं वैसा नहीं कर पाता तभी बापू की सहायता माँगता था। ऐसे ही किसी प्रसंग पर मुझे धीरज बँधाने के लिए बापू ने लिखा, "तुम्हारा पत्र मैंने संभाल लिया है। बिक्री घटती जा रही है यह मैं देख रहा हूँ। मुझे ऐसा लगता था कि स्थिति कुछ सुधरेगी लेकिन तब लगता है कि सुधरने की आशा नहीं है। बंबई में ही खास तौर पर ध्यान देकर काम करूँ तो हो सकता है लेकिन वैसा समय निकालना मेरे लिए संभव नहीं है। यहाँ तो एक लंबे अर्से तक लगातार काम करने की जरूरत है। खादी की पत्रिकाएँ निकलें, भाषणों की व्यवस्था की जाय, फेरीकारों की व्यवस्था हो तो ही काम चले। लेकिन घटती हुई बिक्री से तुम बिलकुल घबराना नहीं। हमें प्रयत्न तो करते ही रहना है।"

विक्रेता की जो योग्यता मुझमें थी उसका उपयोग खादी के निमित्त पूरी से कैसे हो, यह विचार में हमेशा किया करता था। दिन-रात बिक्री बढ़ाये रीतियाँ सोचता रहता था और भाँति-भाँति के प्रयोग भी आजमाता रहता था। प्रचार बिक्री बढ़ाने का एक प्रबल साधन हुआ करता है, इसलिए प्रचार की जो रीति समझ में आती उसे कर देखता। मैंने अनुमान लगाया कि यदि खादी के समाचार देश-भर में नियमित प्रसारित होने लगें तो बम्बई भण्डार को इनसे लाभ मिल सकेगा। इस ख्याल से बम्बई भण्डार की ओर से खादी पत्रिका प्रकाशित करना शुरू किया। बापू के हाथों में पहला अंक जाते ही उनकी जो सूचनाएँ आईं वे आगे जाकर बहुत उपयोगी साबित हुईं। उन्होंने ता. ४-१०-२७ को लिखा था, "तुम्हारी पत्रिका देखी। निकाली सो ठीक किया मगर अब इसे आग्रह-पूर्वक निभाना। पत्रिका में खादी स्तुति को एक से अधिक स्तम्भ मत देना। लेकिन खादी के समाचारों से उसे भर देना। विभिन्न प्रान्तों की खादी प्रगति के अंक देते रहना। इसके पीछे खूब परिश्रम और ज्ञान की जरूरत होगी। वह यदि तुम बना सके तो अमूल्य सेवा हो सकेगी।"

पत्रिका ने धीरे-धीरे प्रभाव जमाना शुरू किया। गुजराती और अंग्रेजी में नियमित प्रकाशित होने लगी। हर एक प्रान्त की खादी की रिपोर्ट इसमें प्रकाशित होती थी। खादी की नयी-नयी जातियों के समाचार उसमें छपते थे। उनकी उत्तरोत्तर प्रगति की खबरें दी जाती थीं। प्रत्रिका के द्वारा देश भर से बम्बई भण्डार की खादी के आर्डर प्राप्त होते थे। पत्रिका यह भी बतलाती थी कि देश में कहाँ-कहाँ पर माल का ढेर जमा हो गया है, पत्रिका के समाचार और लेख पूरे-के-पूरे अथवा उनके उद्धरण राष्ट्रीय समाचार पत्रों में प्रकाशित होते थे। एक बार तो पत्रिका की खपत साठ हजार प्रतियों तक पहुँच गई थी। मुझे हमेशा यह महसूस हुआ कि पत्रिका के लिए उठाया हुआ खर्च सार्थक रहा। चरखा विज्ञान के विशेषज्ञ श्री मगनलाल गांधी माने जाते हैं। उनका लिखा हुआ चरखा शास्त्र तथा खादी विषयक अन्य लेख प्रमाणभूत माने जाते हैं। उन्हें भी प्रचार सम्बन्धी खूब ज्ञान था। चरखा और खादी के साधन सरंजाम के विषय में भी गहरी जानकारी थी। १९२८ में उनका अवसान होने पर खादी-कार्य को बड़ी ठेस पहुँची। उन दिनों में ही एक ऐसी सूचना मिली थी कि चरखा संघ की ओर से खादी प्रचार का एक स्वतंत्र विभाग यदि संचालित किया जाय

तो उससे खादी–कार्य को वेग मिलेगा । उसके काम के लिए रकम एकत्रित करने करने के लिए बापू ने 'नवजीवन' में लिखा था । उन्हें कुछ रकम तो इस कार्य के लिए प्राप्त हो गयी थी । उन्होंने ता. १०–१२–२८ को एक पत्र में मुझे लिखा था, "खादी प्रचार के विषय में विचार आया ही करते हैं, लेकिन इस काम को कौन संभाले यह सोचता हूँ, तब दृष्टि तुम पर ही पड़ती है । तुम बम्बई के काम को तो देखते ही हो । अब लगभग सारे भारत के खादी–काम का ज्ञान भी तुम्हें हो चुका है । इसलिए तुमसे कहता हूँ कि यदि तुम्हारी समझ में आये तो तुम प्रचार विभाग का काम संभाल लो ।"

दसवाँ प्रकरण

अखिल भारत चर्खा संघ की स्थापना के समय उसके पास बाईस लाख रुपयों की पूँजी थी। देश भर में खादी उत्पादन और बिक्री का काम चलाने के लिए यह रकम पर्याप्त नहीं थी। समय-समय पर खादी फंड एकत्रित करने की प्रथा थी। ज्यों-ज्यों खादी कार्य बढ़ता गया त्यों-त्यों पूंजी की कमी उग्र बनती गई। बैंकों से ३ प्रतिशत सैकड़ा ब्याज पर कर्ज लेने का फेसला किया गया। बैंकों से खादी गिरवी रख के कर्ज प्राप्त करना कुछ सरल काम नहीं था। सामान्य रीति यह है कि गिरवी रखे जानेवाले माल के बाजारू मूल्य की अमुक प्रतिशत रकम कर्ज के तौर पर बैंक दिया करते हैं। दूसरे कपड़े को ध्यान में रख कर यदि खादी का मूल्य आंका जाय तो बहुत कम रकम ही बैंकों से मिल सके। लेकिन खादी जिन दामों पर बिकती थी उन्हीं दामों पर उसका मूल्य अंकित करके उसका अमुक प्रतिशत भाग कर्ज के तौर पर बैंकों से प्राप्त किया जावे। बैंकों के अधिकारियों की समझ में यह बात नहीं बैठ रही थी। एक बैंक के अधिकारी ने तो सीधा सवाल किया, "चर्खा संघ की ओर से हस्ताक्षर किसके होंगे ? उनको उत्तर दिया गया, "चर्खा संघ के अध्यक्ष गांधीजी के।" यह सुनते ही वे अधिकारी बोले "हम अपने मार्ग से कुछ उतर कर भी और सामान्य व्यापारी रीति के विरुद्ध जाकर भी संघ को कर्ज देंगे।" बैंकों का एक और रिवाज यह होता है कि गिरवी के माल की गोदाम पर बैंकों का ताला लगता है और बैंक के नाम की पट्टी वहाँ लगा दी जाती है। हमने बैंक के नाम की पट्टी लगवा लेनी स्वीकार नहीं की। केवल बैंक का ताला अंगीकार किया। इस तरह से बैंकों से कर्ज प्राप्त करके पूंजी की तकलीफ कुछ हलकी की गई। बैंक आफ इन्डिया ने तथा इम्पीरियल बैंक ने चरखा संघ को ३ प्रति सैकड़ा की दर पर कर्ज दिये। उस समय चर्खा संघ के काम में करीब ७५ लाख रुपये की पूंजी हो गई थी।

प्रारम्भ में तो यह भी परेशानी की बात थी कि खादी कहाँ से प्राप्त

की जावे। कई उत्पादक हाथ कते सूत के साथ मिल के सूत की मिलावट कर दिया करते थे। इसलिए माल की शुद्धता को बारीकी से जाँच करना जरूरी था। एक बार इसी तरह की जाँच करते हुए ११५ नमूना में से ५३ ऐसे पाये गये जिनमें मिल के सूत का मिश्रण था। इस पर से खादी का काम करनेवालों को चर्खा संघ से प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेने की प्रथा का उद्भव हुआ। जिन दिनों यह झंझट चल रहा था कि खादी कहाँ से प्राप्त की जाय उन्हीं दिनों में पंजाब के श्री रामभज दत्त चौधरी ने गांधीजी को यह समाचार दिया कि पंजाव में ढेरों खादी तैयार होती है और उस खादी का प्रकार भी सुन्दर होता है। इस खादी की दो जातें "चौंसी और पैंसी" विशेष सुन्दर कहीं जाती थीं। बापू ने मुझे आज्ञा दी कि पंजाव के इन खादी केन्द्रों की जांच कर आओ। मैं पंजाव गया। श्री रामभज दत्त चौधरी से मिला। उनसे पूछा कि खादी की चौंसी और पैंसी नामक प्रकारों के निरीक्षण के लिए कहां जाना होगा। किसी जमाने में ये प्रकार प्रसिद्ध रहें हों, लेकिन उस समय उनका कहीं पता न चला। मैं आगे रावलपिंडी तक चला गया गया। वहाँ की कांग्रेस कमेटीवालों की सहायता से इधर-उधर छानबीन करवायी लेकिन हम सफल न हुए। गुजरानवाला गया तो वहाँ से भी निराश ही लौटा।

इस घटना के कई साल बाद यह समाचार मिला कि झंग मघियाना नामक गांव में १८ अर्ज की खादी बुनी जाती है। यह समाचार पाते ही मैंने वहाँ की ट्रेन पकड़ी। उन दिनों मैं चाय का आदी बन चुका था। एक दिन प्रातः काल मैंने गार्ड से पूछा कि चाय किस स्टेशन पर मिल सकेगी तो गार्डने कहा कि चाय का नास्ता कहीं भी नहीं मिलेगा। मुझे बड़ी निराशा हुई। लेकिन एक घंटे में ही एक स्टेशन आया तो वहाँ कोई अनजान भाई चाय और नास्ता लेकर आये। ऐसा कैसे हुआ इसकी पूछ-ताछ करने पर ज्ञात हुआ कि मुझे गांधी जी का आदमी जानकर गार्ड ने ही तार से खबर देकर चाय और नाश्ते का प्रबन्ध करवाया था। मेरी यह यात्रा फलीभूत हुई, क्योंकि यद्यपि मुझे वहाँ से भी चौंसी पैंसी तो न मिली लेकिन ठोस बुनाई की लबदार खादी उस क्षेत्र से में अच्छी मात्रा में प्राप्त कर सका।

ग्यारहवाँ प्रकरण

बम्बई के खादी भंडार के लिए अब प्रिंसेस स्ट्रीट वाली दूकान भी छोटी पड़ने लगी। इसलिए भंडार को कालबादेवी रास्ते पर उस दूकान में ले जाया गया जहाँ आजकल भंडार चल रहा है। प्रारम्भ में तो सूती खादी ही मिला करती थी। रेशमी और ऊनी खादी की माँग आया करती थी। उन दिनों में रेशमी और ऊनी माल की खपत बहुत थी। रेशमी कपड़े की मिलें देश में नई-नई खुलती जा रहीं थीं। हाथ से रेशमी कपड़ा बुननेवाले कारीगर बेकार होते जा रहे थे। स्वदेशी स्टोर में रेशमी कपड़ा बुननेवाले कारीगरों के साथ मेरा सम्बन्ध कायम हुआ था। उनमें से कई एक कारीगरों ने ठेठ बंगाल से मुझे लिखा: "रेशमी हाथ बुनाई का काम दिनों-दिन टूटता जा रहा है। हम बेकार होते जाते हैं। हमारे पूर्वजों की कला नष्ट होती जाती है। हमारी मदद करो।"

पढ़ना छोड़ कर जब मैं काम में लगा था तब बम्बई में मैंने रेशमी कपड़े की दूकान में वर्षों तक नौकरी की थी। इतना ही नहीं बल्कि घर-घर घूम कर रेशमी कपड़े की फेरी भी कर चुका था। मुझे यह अनुभव था कि रेशमी कपड़े की कितनी खपत होती है और कौन-कौन सी जातें लोग पसन्द करते हैं। श्री शंकरलाल बैंकर को मैंने उन रेशमी कपड़े के कारीगरों के पत्र दिखलाये। उन्हें काम देना चाहिए यह मेरी सिफारिश थी। उन्होंने मुझे रेशमी कपड़े की खपत के विषय में पूछा। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि खपत में कोई कठिनाई नहीं आवेगी। चर्खा संघ के पास लाखों रुपयों की पूंजी है उसमें से कुछ रेशम के काम में भी रोकी जा सकती है। रेशम के तन्तु एक प्रकार के कीड़ों से उत्पन्न होते हैं, इसलिए रेशम में हिंसा-अहिंसा का प्रश्न अहर है। कुछेक जातें ऐसी हैं जिनमें कीड़े अपना कोया काट कर चले जाते हैं। बाद में उन कोयों से रेशम कात लिया जाता है। तो कुछ जातों में कीड़े सहित कोये को उबलते हुए पानी में रखते हैं। कीड़ा अन्दर ही नष्ट हो जाता है और कोया से रेशम कात लिया जाता है। भारतवर्ष में अनादि काल से रेशम के काम पर हजारों कारीगर गुजर करते आये हैं।

इन कारीगरों की रोजी कायम रखने की दृष्टि से अखिल भारत चरखा संघ ने रेशमी कपड़े की कला को पुनर्जीवित करने का निश्चय किया। धीरे-धीरे इन बुनकरों को काम मिलता गया; परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के समय रेशमी कपड़े के भाव इस हद तक बढ़ गये कि इन कारीगरों ने धनिक बनने की लालसा से चरखा संघ का आश्रय छोड़ दिया।

बनावटी रेशम परदेशों से बड़ी मात्रा में आयात होने लगा। यह नरम कपड़ा चार या साढ़े चार आने गज बिकने लगा। लड़ाई खत्म होने के बाद अपने ही देश में बनावटी रेशम की मिलें एक के बाद दूसरी खुलने लगीं। रेशमी कपड़े के कारीगर फिर से बेकार होने लगे। चरखा संघ ने उन्हें अपने नियमों के अनुसार फिर काम दिया। आजकल तो खादी की व्याख्या में समानेवाला रेशमी कपड़ा भारत के प्रत्येक भाग के खादी भंडारों में ग्राहकों को आकर्षित करता रहता है क्योंकि यह रेशमी कपड़ा शुद्ध रेशम का है और सस्ता भी है।

बारहवाँ प्रकरण

बम्बई के दोनों भंडारों का एकीकरण हो जाने के कारण मुक्त हो कर श्री हरजीवन कोटक बिहार चले गये और वहाँ से काश्मीर चले गये। काश्मीर पहुँच कर उन्होंने यह जानकारी हासिल की कि खादी की श्रेणी में वहाँ बननेवाले ऊनी कपड़े की कौन-कौन सी जातें आ सकती हैं। उन्होंने यह देखा कि इस प्रकार की बहुत सी जातें हैं जो हाथ-कताई की ऊन से हाथ-बुनाई द्वारा तैयार की जाती हैं। उन दिनों काश्मीरी ऊनी कपड़े का व्यापार कुछ तो वहीं के पूंजीपतियों के हाथ में था और कुछ पंजाब से जाकर वहाँ बस जानेवाले पंजाबियों के हाथ में था। श्री कोटक की जाँच की रिपोर्ट मुझे प्राप्त हुई। इस रिपोर्ट को पढ़ कर मुझे ऐसा लगा कि यदि काश्मीर में चरखा संघ की शाखा खोल दी जाय तो उसके द्वारा ऊनी कपड़े का काम कराया जा सकेगा। काश्मीर की ऋतुओं के अनुसार वर्ष के कुछ मासों में ही ऊनी कपड़े का काम चला करता था। चूँकि वह समय भेड़ों से ऊन उतारने का था इसलिए यदि उस मौसम का लाभ उठाना हो तो शाखा खोलने का निर्णय तुरन्त ही करना लाजिमी था। मौसम सिर पर था। इस काम के लिए बम्बई भण्डार की ओर से पूंजी का प्रबन्ध किया गया। खादी की श्रेणी में आ सकनेवाली ऊनी कपड़े की जातों के उत्पादन कराने का काम वहाँ शुरू कराने का निश्चय कर लिया गया। ट्वीड नाम का ऊनी कपड़ा जिससे कुर्ता पायजामा बन सकता है काश्मीर में अज्ञात काल से बुना जाता रहा है। व्यापारियों की वृत्ति ही ऐसी रहा करती थी कि बुनकरों को कम-से-कम मजदूरी दी जाये, और बुनकर विवशता के कारण कम मजदूरी पर से काम करते थे। इसका प्रभाव कपड़े की पोत पर पड़ा। उसकी बुनाई की सुन्दरता कम होती गयी जिससे उसकी माँग घटी और बुनकर बेकारी का शिकार बनने लगे। इस प्रकार ट्वीड का स्तर गिर गया। यहाँ तक उसके कि एक थान का मूल्य सिर्फ एक रुपया चौदह आना रह गया। काश्मीर में हवाखोरी के निमित्त जानेवाले यात्री इस ट्वीड को "नोकर आ ट्वीड" के नाम

से पहचानते थे। यह जातें इस हद तक बिगड़ चुकी थी कि छः महीने से अधिक वह न चलती थी।

काश्मीर में चरखा संघ की शाखा खोलना तो तय किया, और शाखा खुल कर काम भी प्रारम्भ हो गया लेकिन उसे व्यवस्थित करने की पूरी योजना अभी बनी नहीं थी। शीतकाल में वहाँ बरफ गिरती है, इसलिए उन चार महीनों में वहाँ का काम बन्द रखना होगा ऐसा खयाल था। काम शुरू होते ही वहाँ के कारीगरों के साथ परिचय बढ़ने लगा। कारीगरों को यह बात पसन्द नहीं थी कि शीत काल में काम बन्द रहे। वहाँ के काम का निरीक्षण करने के लिए मुझे काश्मीर जाना था। मैं अपने साथ देशी विलायती मिलों के कपड़ों के बहुत से नमूने लेता गया। वे नमूने मेज पर रखे गये और कारीगरों को दिखाये गये। देखते ही कारीगरों ने कहा : "ऐसे नमूनों के कपड़े हम भी बुन सकते हैं। लेकिन शीत काल में आपकी शाखा बन्द रहे यह बात हमारे अनुकूल नहीं है। असह्य ठंड के दिनों में घर से बाहर निकला नहीं जाता। इसलिए वैसे दिनों में घर के अन्दर रहते हुए यह बुनाई काम ही एक ऐसा काम है जो हम कर सकते हैं और वही हमारी रोटी का आधार है। इसलिए यदि चार महीनें आप काम बन्द रखें तो हमें भूखों मरना पड़ेगा।" श्री कोटक के साथ मशविरा कर बारहों महीने काम चालू रखने का निश्चय कर लिया गया।

श्री कोटक ने इस काम के विषय में गहरा अध्ययन किया। बहुत सा साहित्य प्राप्त करके उन्होंने पढ़ डाला और काश्मीरी भाषा का ज्ञान भी हासिल किया। उनका बनाया हुआ ऊनी माल का सूचीपत्र (केटेलाग) बड़ा आकर्षक था। कपड़े की जातों में सुधार दिखाई देने लगा था। शीतकाल आनेवाला था। कारीगरों ने कहा "शीतकाल में व्यापारी लोग हमें प्रत्येक थान की बुनाई एक या दो रुपया कम देते हैं। आप के यहाँ भी हम वैसी ही कम मजदूरी लेकर काम करने को प्रस्तुत हैं।" श्री कोटक जी ने उन्हें समझाया, यह तो गांधीजी की संस्था है। पूरी रोजी देने का हमारा नियम है। इसलिए तुम्हें पूरी रोज़ी ही मिलेगी। ऐसी बात कारीगरों ने अपनी जिन्दगी में पहले पहल सुनी थी। उनको आश्चर्य हुआ। वे

"आप पूरी रोजी देंगे तो हम काम भी पूरे दिल से करेंगे और कपड़े की बातों में सुधार देख कर आपकी तबियत खुश हो जायगी।" तब से ही ट्वीडों में लगातार सुधार होते ही रहे हैं और ट्वीड का धंधा जो मरणासन्न हो रहा था फिर जोरों से चलने लगा है और कारीगरों की रोजी का प्रशस्त साधन बन गया है।

श्री कोटक पहले शीतकाल में वहीं रहे। एक प्रातःकाल की बात है: उठते ही दातौन करने के लिए पानी निकालने के लिए ज्योंही प्याला पानी के बर्तन में डाला तो वह पानी के बदले किसी कठोर वस्तु से टकराया और वे चकित रह गये। बर्तन का पानी जम कर बरफ बन गया था। वे परेशान हुए कि क्या किया जाय। नल पर गये और नल खोला लेकिन पानी न निकला। चौकीदार तो हँस पड़ा। उसने तुरन्त ही कुछ सूखी घास पत्तियों को नल के नीचे जला कर नल को गरम किया तो तुरन्त पानी निकलने लगा।

प्रारम्भ के २-३ वर्षों में ही काश्मीर शाखा का वार्षिक उत्पादन लगभग चार लाख रुपयों तक पहुँच गया था। आजकल बीस लाख रुपयों तक पहुँच गया है।

काश्मीर का सारा व्यापार करीब-करीब बाहर से आनेवाले यात्रियों पर ही अवलंबित है। प्रति वर्ष के पांच ६ मासों में वे आते-जाते रहते हैं। लेकिन दूकान तो बारहों मास चलानी होती है। इसलिए खर्च की दृष्टि से वह भारी पड़ता है। इसी कारण से व्यापारी लोग माल के अधिक से अधिक दाम लेने का प्रयत्न किया करते हैं। चरखा संघ में ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि यहाँ तो प्रत्येक स्थान पर बिक्री मूल्य की चिट चिपकी हुई रहती है और बिक्री एक ही निर्धारित दर पर होती है। चरखा संघ के इस नियम से व्यापारी लोग नाखुश हुए और शाखा का विरोध करने लगे।

ऊनी कपड़ों में काश्मीरी शाल का स्थान अनोखा है। यह शाल इतना बारीक और मुलायम होता है कि ५५ अर्ज का होते हुए भी हाथ में पहनने की अंगूठी में से वह निकल जाता है। ऐसा शाल व्यापारी लोग दो-ढाई हजार रुपयों में बेचा करते थे।

चरखा संघ ने भी ऐसे शाल कतवा-बुनवा कर तैयार कराने का प्रबन्ध किया। इसके लिए आवश्यक प्रकार की ऊन (पशम) मँगाई, उसे कतवाया और बुनवाया। वर्ष में ऐसी महँगी चीजें बहुत तो बिकती नहीं, इसलिए पाँच से लेकर दस शालें तैयार करायी जातीं और उनके लागत-दामों पर व्यवस्था के १२॥ प्रतिशत की बजाय २५ प्रतिशत बढ़ा कर उनका बिक्री भाव नियत किया जाता था। संघ के शाल का मूल्य कभी भी ७५० रुपये से अधिक नहीं रखना पड़ा। एक बार काश्मीर के महाराज के जन्म दिन का उत्सव था। उस अवसर पर श्रीनगर में एक प्रदर्शिनी का आयोजन किया गया था। चरखा संघ की बनवाई हुई ऐसी ही एक शाल वहाँ सजा कर रक्खी गई। उस पर बिक्री मूल्य की चिट्ठी लगी थी जिसमें ७५० रुपया बिक्री का मूल्य अंकित था। व्यापारियों ने यह देख कर बड़ा शोर मचा दिया। उन्होंने राज्य के प्रधान मंत्री के पास एक लम्बी अर्जी लिख भेजी जिसमें लिखा था कि चरखा संघ काश्मीर के व्यापार को नष्ट करने पर तुला है। दो हजार रुपये की बिकनेवाला शाल ये लोग ७५० रुपये में बेचते हैं। अर्जी मिलते ही प्रधान मंत्री ने उन्हें उत्तर भेजा कि वे इस विषय की जाँच करने के लिए प्रदर्शिनी में जायेंगे। यह समाचार चरखा संघ की शाखा को भी ठीक समय पर मिल गया था। इसलिए उस शाल की कीमत का पूरा ब्योरा तैयार कर लिया गया। अर्थात् पशम का मूल्य, कताई, बुनाई, व्यवस्था खर्च इत्यादि। बिक्री दर किस ढंग से निश्चित की जाती है उसकी तालिका भी तैयार कर रखी। तालिका में यह भी बताया गया था कि यदि कोई व्यापारी चरखा संघ से माल खरीद करे तो उसे १२॥ प्रतिशत कमीशन दिया जाता है। प्रधान मंत्री प्रदर्शिनी में आये। सारी चीजें देखकर जब शाल उन्होंने देखा तो पूछा, "इतनी सस्ती कीमत पर कैसे बेच सकते हो?" उत्तर में शाखा की ओर से जो ब्योरा तैयार था वह उन्हें दिया गया। उन्होंने यह कागज व्यापारियों को दिया और कहा कि इसे समझ कर कुछ कहना हो तो वे कहें। लेकिन फिर व्यापारी क्या कहते। चरखा संघ द्वारा तैयार करायी गयी ऐसा सबसे पहला शाल कांग्रेस के कराची अधिवेशन (१९३१) की प्रदर्शिनी में रखा गया था और उसे बम्बई के एक सज्जन ने खरीदा था। जब बापू गोलमेज परिषद में सम्मिलित होने इंगलैंड जा रहे थे उस समय बापू के ओढ़ने के लिए उन सज्जन ने वह शाल भी श्री महादेव भाई के पास पहुँचा दिया। जहाज पर बापू ने जब सामान की जाँच कराई तब उन्होंने तुरन्त श्री महादेव देसाई से पूछा कि यह शाल कहां से आया। उन्होंने बतला दिया कि

आप के ओढ़ने के लिए एक सज्जन ने भेंट किया है। ऐसी महँगी वस्तु का स्वयं उपयोग करना उन्हें स्वीकार न हुआ। और उसे बेच डालने की सूचना दी। उसी जहाज पर भोपाल की बेगम साहिबा अपने मंत्री श्री कुरेशी के साथ यात्रा कर रही थीं। श्री महादेव भाई ने शाल की चर्चा कुरेशी से की। उन्होंने शाल साहिबा को दिखलाया। देखते ही उन्होंने खरीद लिया।

ऊन कातनेवाली अधिकतर स्त्रियां थीं। उनके चरखे देखने के लिए एक बार उनके घरों में गये तो देखा कि वे उन्हीं पुराने बाप-दादों के वक्त के चरखों से कातती थीं। चरखा डगमगाता हुआ तथा बेढंगा था। विचार आया कि यदि ऊन के चरखे सुधार दिये जायँ तो वे ज्यादा कात कर ज्यादा कमाई कर सकेंगी। चरखा संघ की ओर से चरखा-सुधारक को हर मोहल्ले में भेजा गया। चरखे सुधारे गये। इससे माल की जात में सुधार दिखाई दिया और कातनेवालियों की आय बढ़ी।

चरखा संघ का यह स्वीकृत प्रस्ताव था कि देश भर में कातने की मजदूरी नियमानुकूल पूरी दी जावे। इसके अन्तर्गत काश्मीर की ऊन कातनेवालियों की मजदूरी में जो वृद्धि होनेवाली थी उसका कुछ ज्ञान कराने के लिए पामपुर नामक गाँव में संघ की ओर से कातनेवालियों की एक सभा की गयी। सभा में सैकड़ों महिलाएँ उपस्थित थीं। मैं हिन्दी में बोलता गया और काश्मीरी भाषा में एक भाई उसका अनुवाद सुनाते गये। चरखा संघ की प्रवृत्ति गांधीजी का चरखे के प्रति प्रेम इत्यादि बातें कहने के बाद यह एलान किया गया कि अभी उन्हें कताई क्या दी जाती है और अब से उसमें किस कदर वृद्धि की जा रही है। उस प्रकार अपने आप आगे आ कर कोई अधिक मजदूरी देने का ऐलान करे, ऐसा प्रसंग उसके लिए नया ही था। ज्योंही मैंने अपनि वक्तृता समाप्त की त्यों ही एक वृद्धा निरक्षर होते हुए भी गद्गद् हो यों बोल पड़ी, "हम मिस्कीन (गरीब) हैं। खुदा किसी को हमारे लिए भेज रहा है।" इतने थोड़े शब्दों में उस वृद्धा ने सब कुछ कह दिया। चरखा संघ की नीति से कश्मीर के कारीगरों का विश्वास प्राप्त हो गया।

व्यापारी लोग पश्मीने के शाल तक में मिलावट कर लेते थे। मिल का सूत उसमें डलवा देते। बहुधा वे यहाँ तक करते थे कि माल की तरह का दिखाई देनेवाला विलायती कपड़ा खरीद कर उस पर भरत (कढ़ाई) काम करा कर उसे काश्मीरी शाल के नाम और दाम से बेचते थे। लोगों को जब यह पता लगा

तो अन्य वे व्यापारियों को छोड़ कर चरखा संघ से अपनी जरूरत का माल खरीदना पसन्द करने लगे ।

काश्मीर सरकार ने इंग्लैण्ड से एक निष्णात को इस लिए निमंत्रित किया कि वह काश्मीर आकर वहाँ के ऊनी काम की जाँच करके उसके विकास करने की सलाह-सूचना दे । उसने सारे कामों की जाँच कर लेने के वाद चरखा संघ द्वारा संचालित उत्पादत्ति केन्द्रों की भी जाँच की । उन्होंने अपना यह अभिप्राय प्रकट किया कि चरखा संघ की कार्य पद्धिति से यहाँ का प्राचीन उद्योग समृद्ध वनेगा । इसका परिणाम यह हुआ कि काश्मीर सरकार ने चरखा संघ की शाखा को अपना कार्य वढ़ाने के लिए एक लाख रुपये का ऋण दिया ।

एक वार मान्यवर राजेन्द्र वावू को विलायत जाना था । उनके लिए ऊनी कपड़े तैयार कराने थे । वे वम्वई भण्डार के ऊनी कपड़े में से तैयार करा दिये गये। श्रीराम जी हंसराज कमाणी भी लगभग उसी अर्से में विलायत गये थे तो उनके लिए भी ऊना कोट पतलून वम्वई भंडार द्वारा ही वनवा दिये गये थे । श्री रामजी भाई जव विलायत में थे तव उन्होंने गांधीजी को एक पत्र लिखा था कि उनको अनिच्छा होते हुए भी वहीं विलायती कपड़े का एक सूट तैयार कर लेना पड़ा है । यह पत्र वापूजी ने मेरे पास भेज दिया । विलायत जानेवालों को अनुकूल हो सके ऐसी जाति का खास ऊनी कोटिंग तैयार कराके मैंने उसका नमूना श्री रामजी भाई को भेजा । उस समय उस जाति के कपड़े का नाम "रामजी क्वालिटी" पड़ गया था। वाद में तो वैसे पश्मीना कोटिंग की अनेक जातियां तैयार हुई हैं; और उनकी माँग भी देश भर में उत्पत्ति के साथ वढ़ती रही है ।

काश्मीर शाखा के काम का निरीक्षण करने के लिए मुझे समय-समय पर काश्मीर जाना पड़ता था । वारह-तेरह वार तो मैं वहाँ हो आया हूँ । अन्तिम वार १९४२ में गया था । आज भी वहाँ के प्रधान मंत्री मान्यवर वख्शी गुलाम मोहम्मद का आमंत्रण मेरी जेव में मौजूद है । लेकिन कव जा सकूंगा, अभी नहीं कहा जा सकता । यह लिखते हुए मुझे आनन्द होता है कि श्री वख्शी जो एक समय चरखा संघ की काश्मीर शाखा में विक्रेता थे वही मान्यवर वख्शी आज काश्मीर राज्य के मुख्य मंत्री हैं और राज्य की नौका के सफल कर्णधार सिद्ध हो रहे हैं ।

तेरहवाँ प्रकरण

गांधीजी ने सारे देश का पर्यटन करना आरम्भ किया था। जहाँ-जहाँ वे जाते खादी और चरखे की बात लोगों को समझाते थे जिसे सुन कर लोग वर्षों से बन्द कर रखे चर्खों को निकलवा कर कताई शुरू करते और खादी की प्रतिज्ञा लेते। जिससे खादी की नई माँग पैदा हो जाती थी। वे लोगों को यह विश्वास दिलाते थे कि खादी और चरखे से ही देश आजाद हो सकता है।

विलायती कपड़े के बहिष्कार को सफल बनाने के विषय में उन्होंने मुझे ता. १४-४-२८ के एक पत्र में लिखा "बहिष्कार ने जोर पकड़ा तो अपने पास धोतियाँ और साड़ियाँ काफी तादाद में नहीं हैं। हमें ऐसे प्रतिज्ञा लेनेवालों की जरूरत तो पूरी करनी ही चाहिए जो चाहे केवल लंगोटी भर मिले लेकिन खादी के सिवाय दूसरा वस्त्र शरीर पर धारण नहीं करनेवाले हैं। हाँ, जो दूसरे स्वदेशी कपड़ों को अपना कर विलायती कपड़े के बहिष्कार में भाग लेनेवाले हों ऐसे लोगों के लिए स्वदेशी मिलों की धोतियों और साड़ियों की भी व्यवस्था हमें करनी चाहिए। लेकिन स्वदेशी मिलों के साथ भी हम तब तक सम्बन्ध नहीं जोड़ सकते जब तक वे खादी का उचित स्थान हमेशा के लिए स्वीकार न कर लें और हमारे द्वारा निश्चित की हुई कपड़ों की जातों के अलावा अन्य कोई ऐसी जाति न बनायें जो खादी का स्थान लेती हों और अपनी दूकानों में भी अपनी निश्चित जातियों के सिवाय खादी ही बिक्री के लिए रखें मैं यह समझ सकता हूँ कि शायद मिलें इस स्थिति को स्वीकार न करें। लेकिन उनकी ऐसी स्वीकृति के बिना उनके साथ हम सम्बन्ध भी कैसे जोड़ें ?"

गांधीजी के ऐसे आग्रह से मैंने अपना यह कर्तव्य समझा कि जो लोग विलायती कपड़ों का त्याग धर्म समझ कर कर चुके हों ऐसे व्रतधारियों के लिए खादी मुहैया करूँ। इसलिए मैं देश भर से जहाँ-जहाँ खादी के ढेर पड़े थे उन्हें बम्बई में मँगा मँगा कर बेचने लगा। खादी की खपत बढ़ाने के

प्रयास करते हुए बापू का मार्गदर्शन मिलता ही रहता था। दौरा करते हुए ता. ५-१२-२८ को उन्होंने लिखा, "मैं आजकल अपने देश की आर्थिक, शारीरिक और बौद्धिक कंगाली के दर्शन कर रहा हूँ। खादी प्रचार के विषय में तुमने अधिक विचार किया है। इस काम के लिए तुम्हें आर्थिक सहायता मिल सके तो तुम ज्यादा काम कर सकोगे–ज्यादा काम अर्थात् सारे हिन्दुस्तान का खादी का काम।"

इन्हीं दिनों में मेरे तमाम कार्यों में जीवन भर साथ देनेवाली और संकट-काल में प्रसन्न मुख से छाया के समान मेरा साथ देनेवाली मेरी धर्मपत्नी का दुःखद अवसान हो गया था। जब मैंने लाखों की कमाई का धंधा छोड़ कर मुसीबत के साथ गुजर करनेवाले दिनों में पदार्पण किया तब भी वे मुझे हिम्मत बँधाती रहीं। मेरी आर्थिक कठिनाई के उन दिनों में जबकि खादी में तौलिये अभी चले ही थे, मैं भंडार में तौलियों की पोटली फुंदने बाँधने के लिए घर ले जाता था घर काम से फुर्सत पाकर वे यह काम करती थीं और रात में मैं भी उन्हें मदद करता था। इससे कुछ कमाई होती थी। इस हद तक उन्होंने मेरा साथ दिया। दुःख है कि उनका ऐसा मधुर सहकार अधिक समय तक न चल सका। बापू को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने मुझे अपना स्वास्थ्य टिकाये रखने की सलाह देते हुए लिखा 'चेतों बेन के वियोग से दुखी तो नहीं होगे। नरसी मेहता का यह पद याद करते रहना। भलुं थयुं भांगी जंजाल, सुखें भजीशुं श्री गोपाल।'

चौदहवाँ प्रकरण

१९३० के स्वातंत्र्य संग्राम के दिन थे। देश भर में और खास कर बम्बई में लड़ाई पूरे जोश में चल रही थी। भंडार में खादी लेनेवालों को जब खादी नहीं मिलती तो वे निराश हो कर वापिस लौट जाते। खपत के प्रमाण में उत्पत्ति कम हो पाती थी। बापू ने श्री लक्ष्मीदास आसर को ता: २७-३-३० को लिखा था "आज जब खादी की मांग बढ़ती जा रही है उसकी उत्पत्ति घटती जावेगी। यह अनिवार्य है, लेकिन दुःखद है। यदि जनता ने खादी सच्चे अर्थ में अपनायी होती तो आज खादी की उत्पत्ति कम दिखाई न देकर बढ़ी होती। जो लड़ाई में सीधा भाग नहीं लेते वे अपने और दूसरों के लिए कातते। लेकिन अभी वैसा समय नहीं आया है। अभी तो खादी भक्त ही सच्चे सैनिक दिखाई दे रहे हैं। खादी में सूक्ष्म ही अहिंसा और दृढ़ता समाई हुयी है। अभी खादी को और तप करना पड़ेगा। अपना कर्तव्य स्पष्ट है। हमें आहुति दे देनी है: इस विश्वास के साथ कि इसमें से जो शक्ति पैदा होगी वह खादी को व्यापक कर छोड़ेगी।"

बापू ऐतिहासिक डांडी कूच की तैयारी कर रहे थे। उसमें सैनिक बनने की मैंने अर्जी भेजी। यह अर्जी सेठ जमनालाल बजाज के द्वारा बापू को हाथों-हाथ पहुंच गयी थी। मैं सैनिक का बगल थैला कन्धे पर लटका कर तैयारी के साथ भंडार गया था। डाक में पत्र निकला और अपनी अर्जी के नीचे "अभी रुको" ये शब्द लिखे देख कर मेरी निराशा का पार न रहा। तब मैंने दूसरी अर्जी की कि डांडी-कूचवालों के साथ साथ खादी का प्रचार कर सकने के लिए मुझे खादी की एक बैलगाड़ी चलाने की आज्ञा दी जावे। यह अर्जी स्वीकृत हो गई।

कराची में मैं बापू से मिला और कूच में मुझे शामिल न होने देने का दुःख मैंने उनके समक्ष व्यक्त किया। मैंने पूछा—"क्या आप को मुझमें सैनिक की योग्यता का

अभाव दिखाई दिया था ?" उन्होंने हंस कर उत्तर दिया "तुम्हारी अर्जी पर मैंने सिर्फ दो शब्द लिखे थे "अभी रुको"। क्या तुम उन शब्दों का अर्थ नहीं समझे ?" यह कहते हुए उन्होंने मेरी पीठ पर जोर की थप्पड़ जमाई और कहा "तुम्हारी योग्यता सैनिक से अधिक है। तुम्हें बम्बई की खादी बिक्री सम्हालनी चाहिए। खादी की बिक्री धीरे धीरे बढ़ानी है। यह तुम अपना मुख्य काम समझो।" देश को आजाद करने के लिए इसके बाद कई लड़ाइयां लड़ी गयीं जिनमें हजारों लोग जेल गये। परन्तु मेरे लिए बापू का यही आदेश रहा कि खादी को सम्भालो और जेल जाने का लाभ मुझे कभी न मिला।

मैंने उन्हें खबर दी कि बम्बई भंडार में खादी खत्म हो गई है। अगले दिन सुबह की प्रार्थना के बाद मैं उनके पास चला गया। उन्होंने मुझ से पूछा "दाम देकर खादी की मांग पूरी कर सकोगे ?" मैंने इन्कार किया। तब उन्होंने लोगों की मांग पूरी कर सकने का सीधा मार्ग बताया "हरेक खरीदार अपने कते सूत का एक निश्चित भाग अर्पण करे, यानी खादी खरीद सकने के लिए स्वयं परिश्रम करके पहले सूत काते और फिर खादी प्राप्त करे तो खादी के ढेर लग जावें और बहिष्कार भी सफल हो जावे। खादी के द्वारा ही यह हो सकता है। अब तक लड़ाई में बम्बई सबसे आगे है। सूत के बदले खादी प्राप्त करने में भी बम्बई यदि आगे रहे तो इसका प्रभाव सारे देश पर पड़ेगा।"

खादी का मूल्य रुपये पैसों की बजाय सूत की गुंडियों की संख्या में परिणत कर दिया गया। खादी की किन जातियों को इस सूत की शर्त में से मुक्त रक्खा जाय इसका निर्णय मेरे उपर छोड़ा गया। बापू इतने हर्षित हो गये कि मेरी पीठ पर उनका प्रेम का थप्पड़ पड़ा और सूचना हुई कि अधिक बातें करनी हों तो दोपहर को जब वे सूरत जावेंगे तब साथ में जाते हुए कर लूं। उनके साथ जाते हुए मुझ से उन्होंने पूछा, 'डायरी रखते हो। मैंने इन्कार किया। तुरन्त ही उन्होंने आदेशात्मक स्वर में कहा "आज से ही डायरी लिखनी शुरू कर दो और उसमें मेरा वाक्य लिख लो कि खादी का काम करोड़ों रुपये तक पहुँचने वाला है। उसे सम्भालना तुम्हारा काम है। तुम्हें किसी लड़ाई में शरीक नहीं होना है। तुम्हारे लिए स्वराज्य खादी की बिक्री में समाया हुआ है। इसी से तुम संतोष मानना। सारे देश में खादी की जितनी उत्पत्ति हो उसमें से स्थानिक बिक्री कर जो शेष रहे उन

को अन्य स्थानों में खपा देना यह तुम्हारा काम है। बम्बई भंडार को खादी का 'क्लियरिंग हाउस' समझो।"

बापू के ये वाक्य सदा मेरे लिए दीप स्तम्भ जैसे बने रहे। जहाँ तक हो सकता था मैंने उनको सच्चा साबित किया है।

बापू के विचार में खादी मात्र कपड़ा ही नहीं थी परन्तु उसके ताने और बाने में स्वराज्य की भावना भरी हुई हो, ऐसी उनकी प्रतीति थी। एक सभा में उन्होंने कहा था, "मैं स्वराज्य के लिए अब अन्तिम शस्त्र चलाता हूं। खादी के द्वारा वह सिद्ध हो जायगा।" तब से बम्बई द्वारा नई नीति का अमल कराने का प्रचार उन्होंने शुरू किया। नवजीवन में बम्बई की जनता के प्रति एक अपील प्रकाशित की। मुझे ता: २३-४-३० के पत्र में लिखा-"विदेशी वस्त्र के बहिष्कार का यथार्थ जाननेवाला प्रत्येक व्यक्ति इस तब्दीली को तुरन्त समझ लेगा। अभी मांग के अनुरूप खादी का स्टाक अपने पास नहीं है। मांग रोज ब रोज बढ़ रही है और उत्पत्ति का कार्य उस गति से नहीं बढ़ सकता। इसलिए यदि हम मांग के साथ उत्पत्ति बढ़ाने की शक्ति भी न बढ़ावें तो खादी खत्म हो जायगी और बहिष्कार व्यर्थ सिद्ध होगा। यह बात हम सरल अंकगणित से भी सिद्ध कर सकते हैं, इसलिए तुम बम्बई की जनता को यह सूचित कर दो कि खादी अब रुपयों से नहीं मिलेगी। बल्कि अपने हाथों काते हुए सूत के बदले में ही मिलेगी। ऐसा करने से ही लोग समझ जायँगे कि खादी विलायती कपड़े का सौदा नहीं है। वह तो प्रजा की शक्ति और भावना का माप है। खादी का शास्त्र तो यह बताता है कि जब तक रुई मिल सकेगी तब तक खादी का अभाव नहीं हो सकता। लोगों में कातने की भावना पैदा हो जानी चाहिए। ऐसे आड़े समय में भी जब स्वराज की स्थापना का दिन नजदीक है जनता में कातने की भावना न जगी तो खादी से कोई अर्थ नहीं सरा। उसके लिए थोड़ा सा कष्ट करना चाहिए। इतना जो न करे वह बिना खादी के रह जाय इसी में उसका, खादी का और सबका भला है।"

बम्बई आकर मैं बापू की सूचना के अनुसार काम करने लगा। शहर के भिन्न-भिन्न भागों में छोटे-छोटे खादी भंडार खोल दिये। खादी की फेरी द्वारा

अच्छी बिक्री हुई। खादी का एक लम्बा जुलूस निकला। सबसे आगे खादी की गाडी थी। रास्ते भर खादी बिकती रही। इस तरह यथेष्ठ सफलता मिली और संग्राम में सीधा भाग न लेते हुए मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार खादी को टिकाये रखा।

५ देश भर की खादी के रुके हुए स्टाक की बिक्री करा देने का काम तो था ही। तिरुपुर में एकाध लाख रुपयों की खादी इकट्ठी हो जाने के कारण वहां से संचालक लोग परेशानी अनुभव कर रहे है। इसकी खबर मिलते ही बम्बई भंडार ने वह सारा स्टाक खरीद कर उनको रकम खुली कर दी।

पन्द्रहवाँ प्रकरण

एक बार खादी काम का निरीक्षण करने में तिरुपुर के किसी छोटे केन्द्र के एक गाँव में गया था। तामिलनाड चरखा संघ के मंत्री श्री वरदाचारी मेरे साथ थे। एक झोपड़ी में जाकर देखा कि एक वृद्धा चरखा कात रही थी। मैंने पूछा, "माँजी, घर में तुम कितने आदमी हो?" उत्तर में उसने चरखे पर हाथ रख दिया। मैंने फिर पूछा कि तो फिर गुजर कैसे होती है? उसने फिर चरखे की ओर संकेत किया। इससे मेरे शरीर में रोमांच हो आया। उस वृद्धा की देह से एक प्रकार की खट्टी बू छूट रही थी। इसलिए मैंने उसे स्नान करते रहने का आदेश दिया। लेकिन वह कैसे स्नान करे? शीतकाल की ऋतु। पानी गरम करने के लिए उसे ईंधन कहाँ से मिले? देश भर में तो ऐसी हजारों कत्तिने होंगी जो इसी दशा ने कताई से जीवन निर्वाह करती होंगी। ऐसे न जाने कितने निराधारों का आधार मात्र एक चरखा ही होगा।

इसी विभाग के एक दूसरे गाँव में मैंने एक अंधी कत्तिन के दर्शन किये। एक अंधा बुनकर भी देखने को मिला। खादी-उत्पादन करने वाला एक अन्धा व्यापारी भी मिला। अंधी कत्तिन बहुत अच्छा सूत कात रही थी, उस अन्धे बुनकर की बुनाई कला की प्रशंसा होती थी और वह अन्धा खादी-व्यापारी व्यापारियों का प्रमुख था। ऐसे अन्धों और अपाहिजों का भी आधार खादी ही थी न?

मद्रास कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर पंडित मदनमोहन जी मालवीय पधारे थे। खादी प्रदर्शिनी में घूमते घूमते वे उसी अंधी कत्तिन के पास जा पहुँचे और अन्धी होते हुए भी कितना बढ़िया सूत कात रही थी यह एकटक देखते ही रहे। मैंने बिना शब्द किये चाकू से उसकी माल काट दी। कत्तिन ने चरखे पर हाथ फिरा कर टूटी माल निकाल डाली और अपनी साड़ी के छोर में रक्खी हुई नयी माल चरखे पर चढ़ा ली और फिर कातने लगी। पंडित मालवीयजी के मुख से ये उद्‌गार सहज ही निकल पड़े: "यदि खादी-कार्य के लिए पूंजी एकत्रित

करने की जरूरत पड़े तो मैं इस अन्धी वृद्धा को साथ लेकर देश भर में घूमूँ। मेरा विश्वास है कि देश ऐसी माँग को जरूर पूरा करेगा।"

तिरुपुर के पास ही तिरुचेनगोड नामक स्थान में उस समय श्री राजाजी (चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य) एक खादी केन्द्र चला रहे थे। जब मैं वहाँ पहुँचा तभी कत्तिनें सूत देने आयी हुई थीं। केन्द्र के पास रकम का अभाव होने से वे उन्हें आगामी सप्ताह में आकर पैसे ले जाने को कह रहे होंगे। इसलिए एक बहिन ने राजाजी के पास आकर शिकायत की। राजाजी ने हँसते-हँसते अपनी मार्मिक शैली में मेरी ओर संकेत करके उत्तर दिया, "देखो यह खादी राजा हमको अपनी इच्छानुसार नचाता है। तुम्हारा खयाल रखने के लिए मैं उन्हें समझा रहा हूँ।" उस समय राजाजी 'यंग इंडिया' का सम्पादन भी करते थे। इसलिए यह बात उस पत्र में भी छाप दी। व्यापारी की सामान्य नीति यानी लेने-देने वाले की गरजमंदी का लाभ उठाकर व्यवहार करना मैं जानता था लेकिन इस प्रसंग पर से मैंने खादी-कार्य की गरज का खयाल रखकर व्यवहार करने की नयी नीति सीखी।

सोलहवाँ प्रकरण

मैं खिलाड़ी (सट्टा खेलनेवाले) व्यापारियों के बीच में रहकर व्यापारी बना था। मैंने अपने हाथों कपड़े के बाजार में करोड़ों रुपये के माल का उलट-फेर किया था। यह जमाना पहिले विश्व युद्ध का था। झूठी तेजी मंदी बहुत हुआ करती थी। इसलिए कपड़े का व्यापार महज एक सट्टा रह गया था। बम्बई में इस व्यापार की दलाली करनेवाले भी कई व्यक्ति लखपती बन गये थे। इस पर से अन्दाज किया जा सकता है कि सट्टे की मात्रा किस हद तक पहुँच गयी थी। इस बुद्धि के जोर से मैं कई अच्छे लेकिन बेहद कठिन काम पूरा कर सका हूँ। खादी जैसे पवित्र काम में भी मैंने अपनी साहसिक वृत्ति का उपयोग करके अनपेक्षित फल प्राप्त किये हैं।

बम्बई भंडार को चलते हुए ११ वर्ष हो चुके थे। मुझ पर तीन उत्तरदायित्व रखे गये थे: पूँजी की व्यवस्था, बिक्री की व्यवस्था और भूल से हानि हो जाये तो उसे पूरा करने की व्यवस्था। अखिल भारत चरखा संघ ने ता. १-८-३२ को यह भंडार अपने कब्जे में लिया। उस समय वार्षिक चार लाख रुपयों की बिक्री हुआ करती थी। उसे बढ़ाकर हम लोग सात लाख तक ले गये थे। बिक्री बढ़ाने के साधनों में खादी-हुंडी, राष्ट्रीय सप्ताह, गांधी जयन्ती इत्यादि अवसर बहुत बल प्रदान करते थे। सन् १९३२ में एक से लेकर सौ रुपयों तक के खादी के टिकट छपवा कर बिक्री किये थे। ग्राहक टिकट खरीद कर नकद रकम दे जाते और सुविधानुसार खादी ले जाते थे। बम्बई के नागरिकों के हस्ताक्षरों से खादी खरीदने के लिए अपील निकाली जाती थी। मुख्य-मुख्य नागरिक खादी की फेरी करने निकलते थे। इनमें पूज्य कस्तूरबा गांधी तथा सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम उल्लेखनीय हैं। इससे खादी की प्रतिष्ठा बढ़ी और बिक्री भी बढ़ी।

खादी-पत्रिका के विषय में तो मैं पहले लिख चुका हूँ। उससे खादी-बिक्री को प्रोत्साहन मिला था यह भी लिख गया हूँ। लेकिन चरखा संघ को पत्रिका

का खर्च बहुत अधिक लगता था। उस पर अंकुश रखने की सूचना मिली। प्रचार कार्य को ढीला करना मुझे उचित न लगा। इसलिए मैंने उत्तर में लिखा, "बम्बई भंडार के काम में प्रचलित नियमों के अनुसार २ प्रतिशत तक हानि हो तो संघ के जिम्मे रहेगी और उससे अधिक हानि का जिम्मा मेरा है।" इस आधार पर पत्रिका चालू रखी थी। भंडार संघ के तत्वावधान में चला जाने के बाद उसके व्यय का अंदाजपत्र (बजट) भी संघ द्वारा ही स्वीकार होना था। यदि अंदाजपत्र में व्यय की किसी मद में गत वर्ष से अधिक रकम लिखी हो तो उसका स्पष्टीकरण मांगा जाता तथा खर्च घटाने के लिए अंदाजपत्र लौटा दिया जाता। दूसरी ओर बम्बई भंडार की बिक्री तीव्र गति से बढ़ती जा रही थी। बढ़ते हुए काम के लिए नये कार्यकर्त्ता जरूरत पड़ने पर तुरंत नहीं मिल सकते थे। इसलिए ज्योंही कोई योग्य कार्यकर्ता दिखायी देता, त्योंही मैं उसे रख लिया करता था। जितने समय में वह काम का अनुभव प्राप्त करता उतने समय में उसकी आवश्यकता भी निकल आती। इस तरह भंडार का वास्तविक खर्च अन्दाज से बढ़ जाता था। इसके विरुद्ध चरखा संघ मुझसे खर्च कम करने की अपेक्षा करता था वह मैं कैसे कर सकता था? संघ की अन्य शाखाओं के अंदाजपत्रों से बम्बई शाखा का अंदाजपत्र भिन्न प्रकार का हुआ करता था। इसलिए अन्य सब शाखाओं के अन्दाजपत्रों की जाँच के लिए तो एक बजट समिति थी। परन्तु बम्बई शाखा का बजट (अन्दाजपत्र) बिना बजट समिति के देखे संघ का ट्रस्टी मंडल ही देखता था। यह प्रथा बम्बई में वर्षों तक रही। अपनी शाखा का बजट बनाने की अपनी रीति चरखा संघ के प्रधान मंत्री श्री श्रीकृष्णदास जाजू को मैं कभी भी समझा न सका।

एक बार वर्धा में ट्रस्टी मंडल की सभा थी। उसमें मैंने यह मांग की कि बम्बई शाखा का बजट भी अन्य शाखाओं के बजटों के साथ-साथ बजट समिति को ही देखना चाहिए। बापू ने मंत्री से इसका स्पष्टीकरण करने को कहा। तब मंत्री जी ने कहा, "जबकि अन्य शाखाओं के बजटों में खर्च में कमी की ओर ध्यान रखा जाता है बम्बई शाखा के बजट में व्यय की मात्रा गत वर्ष से अधिक ही हुआ करती है। उसे मैं कम नहीं कर पाता इसलिए उसे मैं सीधा ट्रस्टी मंडल के समक्ष रख दिया करता हूँ।" तब बापू ने मुझसे उत्तर मांगा। मैंने अंकों द्वारा यह सिद्ध किया कि खर्च बढ़ता है

तो बिक्री भी अनुपात से अधिक ही बढ़ती है। बम्बई भंडार ने कभी हानि नहीं दिखायी। इसलिए हमारे अन्दाजपत्र स्वीकृत होने चाहिए। फिर बापू मंत्री की ओर देख कर उनसे प्रत्युत्तर की अपेक्षा करने लगे। उन्होंने जो कहा उसका सारांश यह था कि बम्बई शाखा खर्च में अंकुश नहीं रखती। उसे हमारा अंकुश स्वीकार होना चाहिए। बापू ने मुझसे पूछा, "जैसा अंकुश मंत्री जी चाहते हैं वह तुम कब स्वीकार करने लगोगे?" मुझे विवश होकर स्पष्ट कहना पड़ा, "खादी की प्रगति के लिए जो योजना और अंक मैं अपनी बुद्धि से बनाता हूँ, जिसमें मेरी साहसिक वृत्ति भी काम देती है वे ही स्वीकार किये जाने योग्य हैं। जब मेरी बुद्धि काम न देगी और मैं कोई विचार नहीं कर सकूँगा तब मंत्री जी का अंकुश स्वीकार कर लूंगा।" यह सुनकर सब सभासद हँस पड़े। बापू ने मेरा स्पष्टीकरण सन्तोषजनक माना और मेरा बजट स्वीकार हुआ।

सत्रहवाँ प्रकरण

इन दिनों बापू का मन रचनात्मक कामों में ही लगा रहता था। रचनात्मक काम को सिद्ध किये विना देश के लिए कोई चारा नहीं है, ऐसा दृढ़ विश्वास जैसे बापू को हो गया था। वैसा ही विश्वास वे सारे देश को कराने के प्रयत्नों में लीन रहते थे। मैंने खादी बिक्री के लिए उनका सन्देश माँगा। उन्होंने ता. २७-८-५३ के पत्र में लिखा, "तुम्हें क्या सन्देश भेजूँ? जब मैं यह सुनता हूँ कि खादी और चरखे पर से लोगों का प्रेम उठता जा रहा है तो मेरा इन पर का प्रेम उलटा बढ़ता है।" संग्राम की लहर जब उतर रही हो तब तक खादी और रचनात्मक काम पर की निष्ठा का कम होना बापू कभी सहन नहीं कर सकते थे। वे कार्यकर्ताओं को उत्साहित कर काम में लगाये रखते थे। अपने ता० ५-८-३४ के पत्र में उन्होंने लिखा था, "यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि जिसे हिन्दुस्तान के सात लाख गांवों में रहनेवाले अधभूखे करोड़ों लोगों पर किंचित भी दया होगी वह खादी का द्वेष कैसे करेगा?" बापू का मनोमंथन चलता ही रहता था। जब वे देखते कि कार्यकर्ता राजनैतिक कामों को ज्यादा पसंद करते हैं और मुख्य कार्य की उपेक्षा करते हैं तब उनका दिल रो उठता। वे स्वयं चाहते थे कि ऐसी कांग्रेस को छोड़कर रचनात्मक काम में ही लग जायँ। वे इस बात से भी व्यग्र रहते थे कि कांग्रेस शहरों, शहर की जनता और थोड़े से गिने-चुने बुद्धि-सेवियों की ओर ही विशेष ध्यान देती थी और उन्हीं के संतोष को अपना लक्ष्य मानती थी।

खादी-कार्य से बहुसंख्यक कामगारों को आंशिक सहायता व रोजी मिली। उनके द्वारा उत्पन्न की गयी खादी देशवासियों ने बड़े उत्साह से महंगे दाम देकर भी पहनी। लेकिन गांधीजी इस बात की अपेक्षा करते थे कि कामगारों और खादी-धारियों के जीवन ग्रामोन्नति तथा राष्ट्रोन्नति की ओर मुड़ जाने चाहिए। ऐसा न होने का अर्थ यह है कि देश रचनात्मक कामों का रहस्य समझ नहीं पाया है।

और समझ भी हो तो पचा नहीं पाया । इससे भी गांधीजी को आघात पहुंचता था। उन्होंने कांग्रेस के समक्ष और उसके द्वारा राष्ट्र के समक्ष यह मांग रखी कि अब तक देश की नजर केवल शहरों की ओर ही रही है । उसे मोड़कर अब गांवों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहिए । ता. २७-१०-३४ के दिन बम्बई में मान्यवर राजेन्द्र बाबू की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ । गांधीजी ने अपने मन की व्यथा उस अवसर पर व्यक्त की । उन्होंने बतलाया कि रचनात्मक कामों में अब तक हम केवल खादी पर ही ध्यान केन्द्रित करते गये हैं। गांवों में बहुत से उद्योग और राष्ट्रोपयोगी गृहोद्योग या तो बिलकुल लुप्त हो गये हैं या नष्ट हो जाने की राह देखते हुए जीवित हैं । इन सबको पुनर्जीवित करके राष्ट्र की समृद्धि बढ़ानी चाहिए यह भी उन्होंने समझाया । इसी अधिवेशन में अखिल भारत चरखा संघ के समान अखिल भारत ग्रामोद्योग संघ की स्थापना का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ । ग्रामों के पुनर्निर्माण के लिए हाथ-कताई व हाथ-बुनाई के उपरांत गांव के उद्योगों को उत्तेजन देने और ग्रामवासियों की नैतिक और शारीरिक उन्नति करने के लिए श्री जे० सी० कुमारप्पा को गांधीजी की सलाह से योजनाएं बनाकर उनपर अमल करने की सर्वसत्ता दी गई ।

अठारहवाँ प्रकरण

सन् १९३५ तक के खादी-कार्य पर नजर डालते हुए गांधीजी ने एक प्रसंग पर जो बात कही थी वह भूली नहीं जा सकती। उन्होंने कहा कि "अब मेरी समझ अधिकाधिक रुपयों की खादी-बिक्री होने का कोई महत्व नहीं रहा है। महत्व है इस बात का कि कैसी ग्रामोन्नति की भावना से खादी खरीदी गयी। मगर ऐसा तभी हो जब सब लोग खादी-पागल बनें। अब तक हम लोग खादी का व्यापार बढ़ाकर मुश्किल से वर्ष में पचास लाख तक ले जा पाये हैं। देश में जो करोड़ों रुपये का कपड़ा खपता है उसके सामने खादी की खपत मात्र ½ प्रतिशत ही होने से सन्तोष मानने जैसी स्थिति मालूम नहीं होती। देश के ग्रामोद्योगों का प्रश्न हम सिर्फ इस छोटी मात्रा में हल कर पाये हैं तो हमने कौन सी बड़ी बात कर डाली?" निःसन्देह हम लोग जो यह मानने लगे थे कि खादी का बहुत काम कर डाला यह भ्रम बापू के उपरोक्त कथन से दूर हो गया।

सन् १९३४ तक खादी का "राहत युग" पूरा हुआ मानना चाहिए। इसके बाद खादी ने नैतिक भावना की ओर प्रयाण आरम्भ किया। बापू ने हरिजन में लिखा था "हर एक व्यक्ति अपनी खाने की चीजों, वस्त्रों और प्रतिदिन के उपयोग की अन्य तमाम सामग्री की गहराई से जाँच करे। उनमें जो परदेशी या (देशी हों तो) शहरों की बनी हुई वस्तुएँ हैं उन्हें छोड़कर गाँव की बनी चीजों को ही पसन्द करे। ऐसा करने से आगे की सीढ़ी अपने आप ही साफ दिखायी देने लगेगी।" मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मेरा ध्यान अभी तक बापू की बनायी हुई पहली सीढ़ी पर पूरी तरह नहीं गया था इसलिए उस ओर खूब जागृत रह कर प्रयत्न करते रहने का निश्चय किया। मैंने अपने अन्तःस्थल की जाँच की तो देखा कि बापू का यह भाव अपने से उतारने के पहले मुझे एक लंबा और दुष्कर मार्ग तय करना होगा; बापू ने ग्रामोद्योगों का सूर्य-मंडल मानकर सूर्य के स्थान में अर्थात केन्द्र स्थान में खादी को और शेष

उद्योगों को अन्य ग्रहों के सदृश बतलाया है । अब तक खादी–भंडारों में केवल खादी बिकती थी । अब उन्हें ग्रामोद्योग की अन्य वस्तुओं की भी बाजार व्यव-स्था करनी होगी । बेशक इससे उसकी कार्य–दक्षता बढ़ेगी । इसका भी प्रबन्ध शुरू किया । ऐसा करते समय बापू के साथ की हाल ही की आशा भरी बातें अभी तक कानों में गूंज रही थीं । उन्होंने कहा था, "लोग कहते हैं कि रचनात्मक कार्यों द्वारा स्वराज्य नहीं मिलेगा । मैं कहता हूं कि स्वराज आ रहा है । जब मैं मरूंगा तब मेरे मुंह पर वैसी आशा छा रही होगी ।"

उन्नीसवाँ प्रकरण

खादी को सस्ता करने के भी खूब प्रयत्न किये गये। राजस्थान में रेजी नाम की जो मोटी खादी होती है उसे चार आने गज भाव का बना दिया था। यही भाव पंजाब की मोटी जाति 'लाजपत' खादी का स्थिर किया था। लेकिन खादी को सस्ती बनाने में कत्तिनों का हित भुला दिया जाता था। इन जातों में उनको पूरी रोजी नहीं मिल पाती थी। आठ घंटे कताई करने की मजदूरी इन जातों में मात्र तीन-चार पैसे ही रहते थे। मध्यम अंकों में उन्हें चार-पाँच पैसे और महीन सूत में कुछ अधिक मिल जाता था। खादी सस्ती तो हो रही थी लेकिन उसके बनानेवालों के पेट काटकर सस्ती हो रही है यह बात गांधीजी के ध्यान में आ गयी। उन्होंने खादी कामगारों की मजदूरी की छानबीन की और उसके परिणाम को देखकर वे बेचैन हो गये। उन्होंने देखा कि खादी को मिल के कपड़े के सामने टिका रखने में कामगारों की मजदूरी अधिकाधिक कम की जाती है और उससे केवल खादी खरीदने वालों का ही भला होता है। खादी से कत्तिनों का जीवन निर्वाह हो सके उतनी मजदूरी कम से कम मिलनी ही चाहिए। बापू की माँग तो यह थी कि उन्हें फी घंटे की मजदूरी एक आना मिले ऐसी कताई की दरें होनी चाहिएँ। सिद्धान्त की दृष्टि से बापू की माँग को इन्कार नहीं किया जा सकता था लेकिन व्यवहार में यह पाया जाता था कि जब कत्तिन को प्रति दिन के ३-४ पैसे ही मिलते हुए भी खादी के मूल्य महँगे लगते हैं तो उसे यदि ८ आने रोज देने लगेंगे तो खादी के भाव कहाँ पहुँचेंगे? और उन भावों में खादी को लेगा कौन? तो फिर खादी का काम चलेगा कैसे? ये दलीलें कार्यकर्त्ताओं की थीं। एक दलील यह भी दी गयी कि कताई फुरसत के समय में की जाती है इसलिए यह सिद्धान्त लागू नहीं करना चाहिए। सिद्धान्त का पालन करने से यदि कामगारों को सहायता पहुँचाने का काम ही असम्भव होकर बन्द हो जाये तो वह सिद्धान्त ही फिर किस काम की, यह स्थिति भी सामने आई। इन सब दलीलों से

आने बापू अपनी बात पर और भी अटल हो गये। ता. १८-१०-३५ को ... की सभा में यह निर्णय किया गया कि ८ घंटे के ८ आने नहीं दिये जा सकें तो भी कताई की मजदूरी इस हद तक तो बढ़ानी ही चाहिए जिससे कत्तिन को कम से कम वर्ष में १८ गज कपड़ा और प्रति दिन जीवन निर्वाह के लिए वैज्ञानिक दृष्टि से कम से कम अपेक्षित भोजन मिल सके। एक दिन के ऐसे वैज्ञानिक भोजन का मूल्य करीब ३ आने पाया गया था।

यह स्पष्ट कर दिया गया कि खादी सस्ती प्राप्त करने का उपाय कत्तिन को कम मजदूरी देना नहीं माना जाय बल्कि हर एक व्यक्ति अपनी जरूरत की खादी का सूत स्वयं कात कर कताई बचा ले। इस प्रवृत्ति को वस्त्र-स्वावलंबन नाम दिया गया। वस्त्र स्वावलम्बियों की संख्या बढ़ाने के लिए खादी-भंडारों में धुनाई-कताई का सरंजाम बिक्री करने, उन पर काम करना सिखाने तथा सूत बुना देने की व्यवस्था जारी करनी चाहिए यह सोचा गया। महाराष्ट्र चरखा संघ ने पूरी कताई देने और खादी के भाव आवश्यक मात्रा में बढ़ा देने का निश्चय कर सब से आगे कदम रखा। बाद में बिहार शाखा ने वही मार्ग अपनाया और फिर कुछ समय में सभी शाखाओं में कताई के भाव बढ़ाकर रोज के ३ आने के पैमाने पर स्थिर कर दिये गये।

इतने में राजनीतिक स्थिति ने पलटा खाया। कांग्रेस ने धारा सभाओं के चुनाव में भाग लिया। कई प्रान्तों में कांग्रेस के मंत्रि-मंडल बने। ऐसे प्रान्तों की सरकारों ने खादी-कार्य को मदद देने की इच्छा बताई तो उनके समक्ष चरखा संघ ने मदद की योजनाएँ रखीं। कार्यकर्ताओं को शिक्षण देने की तथा नये केन्द्र खोलने में जो हानि हो उसे पूरा करने के लिए 'सबसिडी' देने की योजनाएँ स्वीकृत की जाकर अमल में आ गयीं। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण भी खादी को अनपेक्षित लाभ मिला।

मिल के कपड़े के भाव दिनों-दिन बढ़ने लगे लेकिन रुई के भाव नहीं बढ़े थे। चरखा संघ की तो ऐसी नीति ही नहीं थी कि खादी के भाव स्थिति का लाभ उठाकर बढ़ाये जाएँ और नफा किया जाए। इसलिए परिणाम यह हुआ कि खादी मिल के कपड़े से सस्ती बिकने लगी। सामान्य व्यापारी तक खादी बेचने लगे। खादी का स्टाक खत्म होने की नौबत आ गयी। खादी की उत्पत्ति बढ़ाने में पूंजी

की कमी महसूस होने लगी। बापू की सलाह माँगी गयी। उन्होंने कहा, "खादी से हम कभी यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि नफा करके उसमें पूंजी बाहर लायी गयी हो तो उसे लौटाया जा सके या बाहर की न हो तो उसे बढ़ाया जा सके। क्योंकि आखिर खादी श्रद्धा के बल पर ही टिकी है, कोई बाजारू वस्तु नहीं हो गयी है। जब तक राजसत्ता जनता के हाथ में नहीं आये या जब तक राजसत्ता ने खादी को न अपना लिया हो तब तक खादी दान भावना पर ही जियेगी। खादी के विस्तार का और कोई रूप नहीं हो सकता।—ता० ७–९–४०"

खादी–कार्य का विस्तार करने के हेतु से नई पूंजी लगा सकने के लिए दान प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया। बापू ने अपने समीप आनेवाले खादी भक्तों के समक्ष यह माँग रखी और उसमें सफलता भी मिली। करीब सात लाख रुपये प्राप्त हो गये। दीर्घ कालीन कर्ज लेने की व्यवस्था भी की गयी। संघ के सहयोगी सदस्यों की संख्या बढ़ाकर उनसे सदस्यता की फीस के रूप में कुछ रकम मिली। संघ के साढ़े तीन लाख कामगारों की छोटी–छोटी जमा रकमों का उपयोग भी पूंजी के लिए किया जाने लगा। इन दिनों खादी की बिक्री एक करोड़ के ऊपर १३ लाख तक पहुँच गयी।

बीसवाँ प्रकरण

सन् १९४२ में कांग्रेस ने अंग्रेजी सरकार को हिन्द छोड़ जाने का आदेश दिया। जिससे तुरंत ही सब प्रान्तीय नेताओं को एक साथ कारावास में रख दिया गया। संग्राम जोर पकड़ गया। बापू आगा खां महल में रखे गये थे। अखिल भारत चरखा संघ के ट्रस्टियों में से कुछ अभी बाहर ही थे। वर्धा में उनकी एक सभा हुई। इस सभा में विचार होकर यह तय हुआ कि संघ का काम चालू रखा जाय। मुझे बापू की अनुपस्थिति में संघ का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। धीरे-धीरे मुझे छोड़ और सब ट्रस्टी भी पकड़ लिये गये। संघ के मंत्री श्री श्रीकृष्णदास जाजू भी पकड़े गये थे। इसलिए प्रधान कार्यालय भी मुझे बम्बई में अपने समीप हटा लेना पड़ा। मेरे मन में यह विचार आने लगा कि संघ इस संग्राम में किस तरह से भाग ले। सरकार ने नियम बनाया कि जिस माल का आग का बीमा उतारा गया हो उसका 'युद्ध खतरा बीमा' अनिवार्य तौर पर उतारा जाय। संघ ने यह 'युद्ध खतरा बीमा' न उतारने का निश्चय कर लिया था। चरखा संघ के कार्यकर्ताओं के प्राविडेंट फंड की रकम सुरक्षित रखने की दृष्टि से उसका अलग ट्रस्ट बना कर उक्त रकम पूंजी में से अलग करके रख ली गयी। युद्ध खतरा बीमा न उतराने के प्रस्ताव के अमल का भार अब मेरे ऊपर था। इस संबंध में देश का दौरा किया। सब से पहले मैं काश्मीर गया। श्री गोपालस्वामी आयंगर उस समय वहाँ के प्रधान मंत्री थे। उनसे मैंने युद्ध खतरा बीमा न कराने की बात कही। उन्होंने कहा "इस विषय में तुम गलती कर रहे हो।" वहां से मैं बनारस गया। बिहार शाखा का पत्र मिला था कि उसका प्रतिनिधि बनारस में ही मुझे मिलेगा। पुलिसवालों की आज्ञा के बिना रेल का टिकट भी नहीं मिलता था। बिहार के प्रतिनिधि अनेक युक्तियाँ चलाकर मुझे बनारस में मिले। बनारस से मैं मद्रास गया। वहाँ मा० राजाजी से बात कही। उन्होंने भी कहा कि मैं गलती पर हूँ। मैं बड़े संकोच में पड़ गया। संघ का अन्य कोई भी ट्रस्टी बाहर सलाह देने के लिए उपलब्ध नहीं था। इसलिए मुझे तो संघ के निर्णय पर ही अमल करना

लाजिमी था। मा० राजाजी ने तो यहां तक कहा कि संघ की दक्षिणी... तो युद्ध खतरा बीमा करानेवाली है। मुझे भी उन्होंने आगे न जाकर ... पहुंचने की सलाह दी। पूना के आगाखां महल में मैं बापू से मिला। मेरे साथ श्री वैकुंठ भाई मेहता भी थे। युद्ध खतरा बीमे की बात बापू के सुनने में आ गयी थी। मैंने इस बात को छेड़ा लेकिन बापू तो एक आदर्श कैदी थे। उन्होंने मेरी बात का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। मैं निराश होकर विचार करने लगा कि अब क्या करूं। देशभर के मुक्त खादी-कार्यकर्ताओं की एक सभा की। सारी स्थिति उसमें रखी। मैंने उनके समक्ष अपनी यह कमजोरी भी रख दी कि मैं अकेला 'युद्ध खतरा बीमा' न कराने के खतरे को उठाने में असमर्थ हूँ। इसलिए मैंने अन्य ५ सदस्यों की एक समिति बनाने की मांग की। वह समिति बना ली गयी और सन १९४४ तक जबकि ट्रस्टी जेलों में से छूटकर आये, इस समिति ने काम किया। बापू भी जेल से बाहर आये और उन्होंने सब को आदेश दिया कि युद्ध खतरा बीमा भर दिया जाय। जब मैं उनसे मिलने गया तब उनके खूब प्रेम-आशीर्वाद प्राप्त किये।

युद्ध काल में सरकार ने खादी-कार्य का ध्वंस करने की कई कार्रवाइयां की थीं। इसलिए खादी काम में रुकी हुई पूंजी मुक्त हो गयी थी। राजस्थान में उस समय खादी-कार्य अच्छी मात्रा में चल रहा था। सूत का स्टाक वहां बढ़ रहा था। श्री घनश्यामदास बिड़ला ने उत्साहित किया था कि सूत के रुके हुए स्टाक की चिंता किये बिना खादी-कार्य को उत्तरोतर बढ़ाया जाय। उस समय राजस्थान शाखा की उत्पत्ति मासिक १२ हजार रुपये की थी। इसे तीन गुनी करने की योजना की गयी। इसके लिए पर्याप्त रुई संग्रह करने के लिए श्री बिड़ला की सहायता मांगी गयी। लेकिन उन्होंने रुई का युद्ध खतरा बीमा उतरवाने का आग्रह रक्खा, जिससे उनकी सहायता न ली जा सकी। तो भी जो कार्य वर्ष भर में करना था वह ६ मास में ही हो गया और इन छः माहों में ही राजस्थान शाखा की मासिक उत्पत्ति बढ़कर ७५ हजार रुपयों तक पहुंच गयी। सन् १९४४ में सरकार ने खादी-कार्य की रुकावटें दूर कर दीं तब सूत का एकत्रित स्टाक बुनवाया जा सका। तब कहीं खादी-उत्पादन को वेग मिला। अब तो राजस्थान शाखा की वार्षिक उत्पत्ति पचास लाख रुपयों तक पहुंच चुकी है और उसे एक करोड़ तक पहुंचाने के मनसूबे हैं।

इक्कीसवाँ प्रकरण

मुक्त होते ही बापू ने खादी-कार्य को मजबूत नींव पर स्थित करने के विचार देश के समक्ष रखे। स्वातंत्र्य संग्राम के दिनों में सरकार ने खादी-कार्य को हानि पहुँचाई थी। फिर वैसी हानि न पहुंचायी जा सके इसलिए उसे विकेन्द्रित करने की और चरखे को हर एक घर का वस्त्र पूर्ति का साधन बनाने की योजना बनायी गयी। पैसे देकर लोग खादी प्राप्त करते थे यह उन्हें पसन्द न था। सूत की लच्छी देकर खादी लेने का विचार उनके हृदय में उत्पन्न हुआ। देश भर के खादी-कार्यकर्ताओं को एकत्रित किया गया। मेरा ऐसा मन्तव्य था कि सूत चलन से खादी की बिक्री घटेगी। श्री राजगोपालाचार्य ने बतलाया कि सूत-चलन से खादी-कार्य बंद हो जायगा और उसे बंद तो नहीं होने देना चाहिए। इसलिए उनकी सलाह थी कि कार्यकर्ता पूर्ण विचार करके ही अपना-अपना मत दें। खादी के पिता गांधीजी की जो मंशा थी उसके विपरीत सूचनाएं आ रही थीं। कार्यकर्ता दुविधा में पड़े हुए थे। सब को यह आतुरता तो थी कि बापू के अनुकूल जहाँ तक हो सके बना जाय। खयाल सिर्फ इतना ही रखना था कि उससे खादी-कार्य को आँच न पहुँचे। बम्बई शाखा ने अपनी राय यह दी कि एक रुपये की खादी की एवज में १ पैसे का सूत और पौने सोलह आने नकद लिये जाया करें। अन्तिम निर्णय यह रहा की प्रति रुपये में दो पैसे का सूत और साढ़े पन्द्रह आने नकद लिये जाया करें। दो पैसे फी रुपया जितना सूत भी लोगों को कात सकने के लिए चरखा चलाना सीखना पड़ा।

गांधीजी ने अपने हस्ताक्षरों में लिखा—"कातो, समझपूर्वक कातो, जो काते वह खादी पहने और जो खादी पहने वह अवश्य काते"। समझपूर्वक का अर्थ यह है कि चरखा अर्थात् कताई अहिंसा का प्रतीक है। अनुभव करके देखो, स्पष्ट दिखाई देगा। कातने में यह सब समाया हुआ है—खेत में से कपास का चुनना, उसमें से

बिनौलों को अलग करना, रुई को धुन कर उसकी पूनी बनाना, मनमाने अंक सूत कातना और उसका दुवटा कर लेना।

प्रति रुपये में दो पैसे का सूत और साढ़े पन्द्रह आने नकद लेने का नियम बनाने में बापू का उद्देश्य यह था कि खादी पहननेवाले कातने लग जायें और स्वावलंबन की अनुभूति करें। लेकिन वैसा हुआ नहीं। कई खादी खरीदने आनेवाले दूसरों से सूत खरीद कर ले आते थे तो कई भंडारों ने ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि एक ओर भंडार पर ही सूत की लच्छियाँ खरीदी जा सकती थीं। कुछ समय बाद सूत और नकदी के परिणाम में भी घटी-बढ़ी होती रही। कहीं-कहीं जनता में ऐसा प्रचार हो गया कि खादी नकद दामों से मिलती ही नहीं, केवल सूत के बदले में ही मिलती है। इससे खादी-बिक्री को धक्का लगा। अंत में सूत का नियम छोड़ दिया गया और खादी-बिक्री के अंक फिर बढ़ गये।

बापू ने मुझे लिखा था, "मैंने जो स्वतंत्र विचार किया है उससे इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि इसमें आगे जाकर कुछ तब्दीली होना संभव है, लेकिन अभी तो इसी पर अधिक सोचना:

(१) खादी बिना धुली बेची जाय। जो धुलवाना चाहें उन्हें धुलवा देने का अलग प्रबंध रक्खा जाय।

(२) खादी का प्रचार अब गाँवों में किया जाना चाहिए। शहरों में खादी-प्रचार करने का युग समाप्त हो गया माना जाय,

(३) जहाँ खादी-उत्पन्न होती हो वहीं यदि बिकती न हो तो खादी चली न गिनी जाय।

(४) शहरों पर अधिक ध्यान देने से खादी की नित्यता को अपार हानि पहुंची है।

(५) इतना तो साफ दिखायी देता है कि सामान्य तौर पर एक प्रान्त की खादी को दूसरे प्रान्त में बिक्री के लिए ले जाना न पड़े। यदि हिन्दुस्तान में हमने जगह जगह मैनचेस्टर कायम किये तो खादी की अपने हाथों हत्या कर लेंगे।

(६) खादी की मजबूती, सरसता, आब वगैरह पर अधिक ध्यान देने की जरूरत है।

इन सूचनाओं से तुम्हारे बिक्री के प्रयत्नों में बिलकुल ढिलाई न आने पावे। बिक्री और वह भी शहरों में यह तुम्हारा क्षेत्र रहा है। लेकिन असली चीज अगर तुम्हारे ध्यान में रहेगी तो उसके अनुसार यथासम्भव तुम्हारी योजनाएं बना करेंगी और वह अच्छा होगा।"

बाइसवाँ प्रकरण

अगस्त सन् १९४७ में स्वराज्य मिल गया । अंग्रेज सम्मानपूर्वक, भारत से विदा हो गये । कई लोगों को मन में ऐसा लगा कि अब तो स्वराज्य हो गया, अब खादी की क्या जरूरत रही ? इधर मेरे जैसे विचार के लोग यह सोचने लगे कि अब स्वराज्य हो गया इसलिए खादी-कार्य का पूर्ण विकास हो सकेगा । जब स्वतंत्र भारत के राष्ट्रध्वज में चरखे का प्रतीक चक्र अशोक चक्र के रूप में स्वीकार किया गया तब यह आशा हो गयी कि चूँकि चरखे को इतने महत्व का स्थान मिला है इसलिए चरखा स्वतंत्र भारत में खूब व्यापक बनेगा ।

परंतु स्वराज्य मिलने के बाद बापूजी की विचार शैली कुछ जुदा ही थी । उनके विचार में खादी-कार्य जनता को स्वावलंबी बनाने का साधन था । १९४७ की चरखा द्वादशी पर उन्होंने यह सन्देश भेजा—"खादी का एक युग समाप्त हुआ है । शायद खादी ने गरीबों की कुछ सेवा की है । अब जो काम करने को शेष रहा है वह यह है कि गरीब जनता स्वावलंबी कैसे बने और खादी अहिंसा की मूर्ति है । यह दोनों बातें जनता को सिखायी जावें और यही सच्चा काम है । इसीमें हमें श्रद्धा प्रदर्शित करनी है ।"

स्वराज्य प्राप्ति के बाद भारत की नवरचना का काम अभी अधूरा ही था कि भारत को स्वराज्य दिलानेवाले राष्ट्रपिता गांधीजी का ता० ३० जनवरी १९४८ के दिन निर्वाण हो गया । हम सबने अपने हृदय को मजबूत करके और यह निश्चय करके कि हम उनके द्वारा छोड़े गये देश की नवरचना के काम को अपना जीवन कार्य बनाके उसे जारी रखेंगे, उसको वेग प्रदान करेंगे तथा उसका विकास करेंगे, बापू को श्रद्धांजलि अर्पित की ।

ता० १३ मार्च १९४८ को सेवाग्राम में देशभर के रचनात्मक कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन हुआ । इस सम्मेलन के होने का निश्चय बापू के सामने ही हो चुका था

वे उसमें उपस्थित रहनेवाले थे। उनके निर्वाण के बाद इस सम्मेलन में पहली बार सब कार्यकर्त्ता एकत्रित हुए। इसी सम्मेलन में बापू की तमाम रचनात्मक संस्थाओं का एकीकरण कर सर्व सेवा संघ नाम की एक नयी संस्था की स्थापना की गयी और सर्वोदय समाज की रचना करने का प्रारम्भ हुआ। खादी द्वारा वस्त्र स्वावलम्बन का कार्य देश में व्यवस्थित तौर पर चलाया जाने लगा। हजारों निर्वासित भाईयों के लिए भी खादी-कार्य आशीर्वाद रूप सिद्ध हुआ। प्रान्तीय सरकारें खादी-कार्य में रस लेने लगीं। खादी की उत्पत्ति बढ़ गयी और उसकी बिक्री का काम एक बार फिर पिछड़ गया। खादी इकट्ठी होने लगी जिससे कार्यकर्त्ताओं को चिन्ता हुई।

खादी को स्थायी बनाने के लिए उसके द्वारा वस्त्र-स्वावलम्बन की प्रवृत्ति पर अधिकाधिक जोर देने का निश्चय किया गया था और तदर्थ देश भर में स्थान-स्थान पर कताई मंडलों की स्थापना होने लगी थी। विनोबाजी ने यह आदेश निकाला था कि बापू को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए प्रति वर्ष १२ फरवरी का दिन सर्वोदय दिन के नाम से मनाया जाय और उस दिन हर एक खादी-प्रेमी व्यक्ति अपने हाथ के कते हुए सूत की एक-एक लच्छी अर्पित करे। इस अत्यंत व्यापक कार्यक्रम से खादी के प्रति श्रद्धा और भी बढ़ने लगी। लेकिन दूसरी ओर व्यावहारिक रूप में विचार करें तो दिखायी देता था कि खादी-कार्य यथेष्ट जोर नहीं पकड़ रहा था। उसके प्रति सरकार की नीति का अनिश्चित होना भी एक सम्भावित कारण था! पंजाब प्रान्त खादी-कार्य के लिए देश भर में प्रसिद्ध है। वहाँ खादी की उत्पत्ति बड़ी मात्रा में हुआ करती है। देश भर में पंजाब की सस्ती खादी की माँग सदा ही रही है। वहाँ डाक्टर गोपीचंद जी भार्गव के मंत्रि मंडल के कार्य काल में सरकार ने एक खादी-योजना अपनायी थी और उस पर अमल होता रहा था। बाद में श्री भीमसेन जी सच्चर का प्रधान मंडल बनने पर उस योजना को बंद कर देने की बातें उठायी जाने लगीं और वैसे करने के कागजात तैयार होने लगे। गवर्नर के शासन काल में वे मसविदे गवर्नर के समक्ष विचारार्थ पेश हुए और पंजाब की खादी-योजना को समेट लेने का निर्णय किया गया। सरकार ने एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति इसलिए की कि वह चालू काम को पहले अपने कब्जे में संभाल ले और फिर उसे बंद कर दे। पंजाब के खादी-कार्यकर्त्ताओं ने मुझे इस स्थिति की

सूचना भेजी। मैंने तुरंत ही राष्ट्रपति महोदय को एक पत्र लिखा कि पंजाब सरकार के किये गये निर्णय पर अमल करना स्थगित करा दिया जाय। और वहाँ के खादी-कार्य की जाँच करने की मुझे आज्ञा मिले। मेरी माँग स्वीकृत की गयी। मैं पंजाब गया। खादी-कार्य का दफ्तर जालंधर में था। वहाँ जाकर मैंने बड़ी बारीकी से जाँच की। मैंने देखा कि वहाँ की खादी की जाति बहुत अच्छी थी और उसकी देश भर में माँग थी। उस कार्य में सरकारी विभाग को कुछ नफा भी रहा था। ऐसे उपयोगी काम को बंद करा देने संबंधी जो रिपोर्ट तैयार हुई थी उसमें कहा गया था कि इस काम से कत्तिनों को रोज की मात्र एकाध पैसे की मजदूरी मिलती है और जुलाहों को मात्र एक दो आना। इसीलिए गवर्नर महोदय ने उसे बंद कर देने का फैसला किया था। परंतु स्पष्ट है कि यह रिपोर्ट बिलकुल गलत थी। मैंने सच्चे अंक तैयार किये और उनके आधार पर अपनी रिपोर्ट लिखकर गवर्नर महोदय माननीय चन्दूलाल त्रिवेदी से मिलने सिमला गया। वे किसी काम से दिल्ली गये हुए थे। इसलिए मैं दिल्ली में उनसे मिला। उन्हें अपनी रिपोर्ट दी और बातें कीं, चर्चा कर लेने पर उन्होंने अपना फैसला बदला जिससे पंजाब सरकार का खादी-विभाग चालू रहा और तब से आज तक चालू है।

पंजाब की तरह मद्रास और बम्बई की सरकारें भी खादी-कार्य को खूब सहायता दे रही थीं। लेकिन खादी का उपयोग यथेष्ट मात्रा में विकसित नहीं हो रहा था। सन् १९५२ में देशभर में नब्बे लाख रुपये की खादी जमा हो गयी थी और बिक्री का इन्तजाम कर रही थी। खादी-केन्द्रों में कताई चुकाने की शक्ति नहीं रही थी। ऐसी स्थिति आ गई थी कि सारा काम बन्द हो जायगा। मुझे अपार चिन्ता हो रही थी कि कैसे क्या किया जाय। खादी बिक्री की जिम्मेदारी बापू ने मुझ पर डाली थी। मैंने अपनी रही सही शक्ति आजमाई। इससे संग्रह की मात्रा कुछ थोड़ी घटी। लेकिन चिन्ता दूर न हो सकी। मुझे लगा कि खादी इतिहास में मेरी पहली हार होने जा रही है। इतने में खादी के अधूरे काम को विकसित करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने अखिल भारत खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड की रचना करने का फैसला किया। बोर्ड के लिए सदस्य चुनने की बात आई तो यह निर्णय हुआ कि खादी कार्य में लगे हुए कार्यकर्त्ताओं को बोर्ड का सदस्य बनाया जाय। इस तरह के सदस्यों की नामावली तैयार हुई। उसमें मेरा नाम छूट गया। श्री वैकुण्ठ भाई बोर्ड के अध्यक्ष होनेवाले थे। मेरे हृदय में यह मन्थन शुरू हुआ कि मैं इसके लिए क्या करूँ? मेरे स्नेहियों

मेरी परेशानी का पता चला। सब मित्रों को और मुझे भी ऐसा लगता था कि सदस्यों की नामावली में कहीं भूल हो रही है या उसमें कोई कमी रह गई है। यह विचार हुआ कि यह बातें सम्बन्धित व्यक्तियों के ध्यान में लानी चाहिए। लेकिन यह समझ में न आया कि कैसे यह सब किया जाय। अन्त में एक पत्र लिख कर मैंने श्री वैकुण्ठ भाई को यह बात बताई। इतने में उनका भी पत्र मिला कि वे भी यही सोच रहे थे कि मेरा नाम सूची में रखा जाने से कैसे रह गया। उनके प्रयास से मेरी वर्षों की खादी की अटूट सेवा चालू रह सकी।

तारीख ३ फरवरी १९५३ के दिन पंडित नेहरू बोर्ड का उद्घाटन करनेवाले थे। बोर्ड के सब सदस्य दिल्ली पहुँच गये। उद्घाटन विधि होने से पहले सामूहिक प्रार्थना तथा सामूहिक कताई के कार्यक्रम रखे गये थे। सदस्य यह भी सोच रहे थे कि खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड जैसी संस्था के प्रारम्भ होने का समाचार देश को किसी अनोखी रीति से दिया जाना चाहिए। इसलिए यह निर्णय किया गया कि खादी बिक्री पर तीन आने की रुपये की रिबेट तारीख १२ फरवरी से ३१ मार्च तक देश भर के खादी खरीददारों को दी जाय और केन्द्रीय सरकार के खजाने से यह रकम चुकाना स्वीकृत किया जाय। सरकारी विभागीय कार्यविधि में इस विषय के हुक्म निकालने में सिर्फ १० दिन लगे। इन दिनों में खादी भंडारों पर ग्राहकों की बड़ी भीड़ रही। अन्तिम सप्ताह में ग्राहकों को सम्भालना लगभग असंभव हो गया। बहुत से ग्राहकों ने तो बिना माल लिये हुए रकम देकर बिल प्राप्त करने भर से ही सन्तोष मान लिया और कहते गये कि वे पीछे आ कर खादी ले जायेंगे। इस तरह ३१ मार्च तक खादी का नब्बे लाख का स्टाक बिक गया।

तेईसवाँ प्रकरण

खादी बोर्ड की स्थापना के पहले देश भर में अखिल भारत चरखा संघ की शाखाएँ फैली हुई थीं और उनके द्वारा लगभग डेढ़ करोड़ रुपये की खादी की बिक्री प्रति वर्ष की जाती थी। उसे बढ़ा कर २५ करोड़ रुपये तक पहुँचाने की योजना बना कर उस पर विचार किया गया। ५५ करोड़ रुपये की खादी का उत्पादन करके उसे बेच सकने के लिए कितने व्यवस्थित और विशाल प्रचार कार्य की आवश्यकता होगी, इस विषय पर भी कई दिनों तक विचार होता रहा हिसाब लगाने पर जब यह ज्ञात हुआ कि ऐसे प्रचार कार्य का व्यय लगभग एक करोड़ रुपये तक पहुँचेगा तब सब सदस्य चौंके। यह प्रतीति करना सबके लिए कठिन हो रहा था कि इतनी बड़ी रकम प्रचार कार्य में कैसे खर्च कर दी जाय तथा इतना बड़ा खर्च उचित माना जायगा कि नहीं। लम्बी मंत्रणाओं के अन्त में इस निर्णय पर पहुँचे कि खादी कार्य को एक छलांग में २५ गुना बढ़ा लेना हो तो उसके लिए जरूरी प्रचार खर्च का भार उठाना ही चाहिए। बाद में पच्चीस करोड़ रुपये की खादी–उत्पत्ति की योजना पुस्तकाकार में प्रकाशित हुई।

बोर्ड का प्रधान कार्यालय अध्यक्ष महोदय भाई वैकुण्ठराय मेहता की अनुकूलता की दृष्टि से बम्बई में रखा गया। प्रारम्भ में क्वीन्स बैरेक्स में एक छोटी सी जगह मिली। क्रमशः काम बढ़ता गया और कार्यालय का स्थान बदलता गया। अब तक यह कार्यालय सात स्थानों में बदल चुका है जो इस बोर्ड के काम के विस्तार का प्रमाण है। बम्बई के अतिरिक्त बोर्ड के कई विभागीय कार्यालय वर्धा, लखनऊ तथा अन्य स्थानों में खुले हैं।

बोर्ड के सदस्यों में भाई वैकुण्ठ राय मेहता के सिवाय शायद ही किसी अन्य सदस्य को सरकारी रीति नीत का अनुभव होगा। अतः प्रारम्भ में सरकारी विभागों द्वारा काम कराने में बहुत सी परेशानियाँ उठानी पड़ीं। क्रमशः सरकारी रीति–नीति

व्यवस्था आ गयी और काम सुव्यवस्थित हो गया। प्रारम्भ में बोर्ड का काम-काज वाणिज्य मंत्रालय (Ministry of Commerce) के आधीन था। फिर वह उत्पादन मंत्रालय (Ministry of Production) के आधीन आया। सरकारी विभागों के लिए खादी और ग्रामोद्योग के काम बिलकुल ही नये थे। इसलिए उन्हें भी बोर्ड का काम-काज समझने में कठिनाई होती थी। बोर्ड अपनी अर्जियाँ सरकारी विभाग में स्वीकृति के लिए भेजा करता था। वे अर्जियाँ भिन्न-भिन्न विभागों में घूमा करती थीं और स्वीकृत होने में बहुत सा समय निकल जाता था। इतने में कार्यकर्ता परेशान होने लगते थे। यह सरकारी नीति थी कि स्वीकृत रकम यदि ३१ मार्च तक खर्च न हो जावे तो वह सरकार को वापिस देनी होती थी। इधर स्वीकृति में समय अधिक लगने से योजनाओं पर अमल करने के लिए समय कम रह जाता था। इसलिए ३१ मार्च तक योजनाएँ पूरी करने में बड़ी कठिनाई होती थी, इससे भी कार्यकर्ता हैरान हो जाते थे। तिस पर यह कार्य व्यापारिक नियमों के अन्तर्गत कराने होते थे। इसलिए व्यापार, व्यवहार और सरकारी तंत्र इन तीनों में मेल बैठाने में भी कुछ कम प्रयास नहीं करना होता था। अब सब काम कुछ जमाया जा चुका है। यह सूचना सामने आने से बोर्ड के स्थान पर यदि कमीशन बना दिया जावे जिसे हिसाबी काम सम्बन्धी पूरे अधिकार प्राप्त हों काम में सहूलियत होगी। बोर्ड के साथ ही अब तो कमीशन भी बन चुका है।

बोर्ड का कार्यक्षेत्र खादी और कुछ ग्रामोद्योगों तक सीमित है। खादी-कार्य वर्षों पुराना होने से तुलना में बहुत व्यवस्थित है। यह भी कह सकते हैं कि खादी-कार्य का तो एक शास्त्र तैयार पड़ा है। सारे देश में वह व्याप्त है। उसे करने के लिए गांवों में हजारों कार्यकर्ता वर्षों से संगठित चले आ रहे हैं जिससे बोर्ड की खादी की योजनाएँ सरलता से अमल में आ जाती हैं। ग्रामोद्योगों के विषय में वैसी स्थिति नहीं है। इसलिए ग्रामोद्योगों को व्यवस्थित और वेगवान बनाना बोर्ड का काम है।

जैसे भारतीय सरकार की रचना में केन्द्रीय सरकार और उसके नीचे प्रादेशिक सरकारें बनी हुई हैं वैसे ही अखिल भारत खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड के अन्तर्गत भी प्रादेशिक खादी और ग्रामोद्योग बोर्डों की रचना करने का निश्चय किया गया। उसके अनुसार कई प्रदेशों में बोर्ड बन गये हैं। इनमें से बम्बई और

सौराष्ट्र के प्रादेशिक खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड आदर्श रूप है यह जरा भी अनुचित नहीं है। तमाम प्रदेशों में सौराष्ट्र एक छोटा सा प्रदेश है। लेकिन इस विषय में सौराष्ट्र ही सबसे आगे है। सौराष्ट्र मेरी जन्मभूमि है, इसलिए उसकी कुछ विशेष सेवा कर सकने का स्वप्न मैं वर्षों से देखता रहा हूँ। एक बार तो मैंने सौराष्ट्र में जो तब काठियावाड़ कहलाता था, खादी काम के लिए जा बैठने का अपना विचार बापू के समक्ष रखा भी था। लेकिन बापू ने यह आग्रह किया कि मुझे बम्बई का काम संभालते रहना चाहिए। त्रिपुरी कांग्रेस के अधिवेशन के समय मैंने दूसरी बार काठियावाड़ जाने की आज्ञा चाही। बापू ने यह स्वीकार किया कि मैं प्रयोग की दृष्टि से दो वर्ष के लिए काठियावाड़ जाऊं और इस बीच में श्री पुरुषोत्तम कानजी (काकूभाई) बम्बई भंडार का काम सम्भालें।

बम्बई रहते-रहते मुझे मुद्दतें हो गयी थीं। इसलिए जब मुझे सौराष्ट्र जाने का यह प्रसंग मिला तो मैं वीरमगाम जा पहुँचा। तब इस विचार से कि मैं अपने वतन जा रहा हूँ, मुझे बड़ा आनन्द हुआ। ससुराल से पीहर जाते समय पीहर के पेड़-पौधे देखते ही किसी स्त्री को जैसा आनंद होता होगा, कुछ-कुछ वैसी ही अनुभूति मुझे हुई। मैं राजकोट पहुँचा। वहाँ श्री नारायणदासभाई गांधी राष्ट्रीय शाला में खादी तथा अन्य रचनात्मक काम करने के लिए धूनी रमा कर आ बैठे थे। रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं का एक सम्मेलन उस समय वहाँ हो रहा था। उसमें मैंने अपनी इच्छा व्यक्त की। श्री नारायणदास गांधी ने सूचना दी कि सौराष्ट्र में खादी-उत्पत्ति का काम अभी नया-नया है। उसके पूरा विकसित होने पर ही मुझे बिक्री की योजना बनानी चाहिए। तभी मेरी बिक्री सम्बन्धी सलाह, सूचना तथा संचालन उपयोगी होंगे। यह दलील मेरी समझ में आ गयी और इसलिए उस समय मैं बम्बई लौट आया।

बाद में जब काठियावाड़ खादी मंडल का संगठन हुआ तब फिर एक बार मेरे मन में काठियावाड़ जा बैठने का विचार आया। उस मंडल का सदस्य बन कर मैं काम कर सकता था। इसके लिए मैंने बापू की सलाह माँगी। उन्होंने नानाभाई भट्ट की राय मँगायी। उनकी ओर से मंडल की प्रथम सभा में भाग लेने के लिए मुझे आमंत्रित किया। काठियावाड़ में खादी-कार्य को विकसित करने के लिए वहाँ मेरी माँग की गयी और मैं उस मंडल का सदस्य बन गया।

किन्तु जो भी सौराष्ट्र की सेवा करने की मेरी लालसा उसके कई वर्षों बाद फलीभूत हो पायी। जब अखिल भारतीय खादी-ग्रामोद्योग बोर्ड की स्थापना के बाद उसी के पद चिन्हों पर सौराष्ट्र खादी ग्रामोद्योग बोर्ड की रचना की गई तब मैं उसका भी सदस्य बना और इस सदस्यता के कारण मुझे कई बार सौराष्ट्र जाने-आने का अवसर मिला। मैंने समूचे सौराष्ट्र का दौरा किया और वहां के खादी-कार्य को नजदीक से देखा। सौराष्ट्र का प्रादेशिक खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड सच्चे रूप में एक वैधानिक मंडल है। श्री रतुभाई अदाणी जैसे रचनात्मक कार्यकर्ता उसके प्रमुख रहे हैं तथा अन्य निष्ठावान कार्यकर्ता उसके सदस्य हैं। इसलिए इस बोर्ड का काम सौराष्ट्र में अत्यन्त व्यवस्थित और मजबूत हो सका है। इसके काम में मैं अपनी उत्तरावस्था में पहुँच कर भी कुछ-न-कुछ उपयोगी हो सकता हूँ, इससे मुझे खूब संतोष मिलता है और मेरी वर्षों की महत्वाकांक्षा भी इसमें योग देकर सफल हो रही है।

केन्द्रीय बोर्ड की सफलता भी प्रादेशिक बोर्ड के कार्य पर ही अवलंबित है। केन्द्रीय बोर्ड के अन्तर्गत सात भिन्न-भिन्न विभाग हैं। हरेक विभाग का एक-एक संचालक है जो उस विभाग के कार्य की योजनाएं स्वीकृत करके उन पर अमल करता है और उस विभाग की पूरी जिम्मेदारी संभालता है। वास्तविक कार्य तो प्रादेशिक बोर्ड को ही करना पड़ता है। अपने-अपने प्रदेश में खादी और ग्रामोद्योगों के काम चलाने की जो अनुकूलताएं उपलब्ध हैं उनका लाभ उठा कर नष्ट होते जा रहे उद्योगों को पुनर्जीवित करने तथा नये उद्योग चलाने का काम प्रादेशिक बोर्ड केन्द्रीय बोर्ड की नीति के अनुसार तथा उसकी सहायता से किया करते हैं। सौराष्ट्र ने इसका खूब लाभ उठाया है और इस प्रदेश में खादी ग्रामोद्योगों की कई योजनाएं सफलता से अमल में आ रही हैं।

चौबीसवाँ प्रकरण

केन्द्रीय बोर्ड ने खादी के सिवाय जिन ग्रामोद्योगों की योजनाएँ स्वीकृत करके अमल में रखा है उनमें ये उद्योग हैं : (१) तेलघानी, (२) कुम्हारकाम, (३) आटे की चक्की (४) मधुमक्खी-पालन (५) चर्मोद्योग (६) हाथ कुटा चावल (७) गुड़ खाँडसारी (८) हाथ-कागज (९) ग्रामीण दियासलाई (१०) ताड़गुड़ और (११) अखाद्य तेलों का साबुन ।

तेलघानी

तेल की मिलों ने तेल और घानी दोनों का नाश किया है । मिल का तेल अपनी सस्ताई के कारण घर-घर में पहुँच गया है । सस्ताई की घुड़दौड़ में मिलावट बेहद होने लगी है । खाद्य तेलों में सफेद तेल (साफ किया हुआ मिट्टी का तेल) तथा अंडी जैसी चीजों का मिश्रण होने लगा । इससे आम जनता को जो घी के अभाव में अब तक शुद्ध तेल के सहारे टिकी हुई थी इस मिलावट का शिकार हो जाना पड़ा । घानी को पुनर्जीवित करने में जनता के स्वास्थ्य की दृष्टि भी समायी हुई है । लोग इसे समझ नहीं पाते । घानी के तेल में भी मिल का तेल मिलाया जाने लगा इसलिए घानी के तेल पर से भी लोगों का विश्वास उठ गया । घानी उद्योग को फिर से समर्थन प्राप्त करने में ऐसी अनेक प्रतिकूलताएं उपस्थित हो गयी हैं । अब सहकारी समितियों द्वारा घानी तेल उद्योग को जमाया जा रहा है । खादी की तरह घानी के तेल पर भी सरकार जो एक आने सेर की रियायत देती है उसका हेतु मिल तेल से घानी के तेल को संरक्षण देना ही है ।

कुम्हार काम

अपने समाज रूपी शरीर में कुम्हार को एक आवश्यक अंग माना गया है । ब्याह आदि प्रसंगों पर कुम्हार द्वारा बनाये जानेवाले मिट्टी के

के तरह-तरह के पात्रों का उपयोग सदा किया जाता रहा है। इसका परिणाम यह था कि कुम्हार का एक भी घर न हो ऐसे किसी गाँव की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। कुम्हार को प्रत्येक गृहस्थ के पास से थोड़ा-थोड़ा करके आजीविका मिलती रहती थी। लेकिन आजकल युगधर्म कुछ बदला दिखायी देता है। धातुओं के बर्तनों, मैंगलोरी खपरैलों तथा सीमेन्ट के नाना प्रकार के उपयोगों ने कुम्हार काम को मृतप्राय दशा में पहुँचा दिया है। ठंडे पानी के लिए मिट्टी के घड़े को हटा सकने वाले किसी सस्ते उपकरण की शोध अभी तक नहीं हो पायी है, इसलिए मिट्टी का घड़ा अभी अपना स्थान बनाये हुए है।

गाँवों में कुम्हार को अभी पूरी नहीं तो आंशिक आजीविका मिल जाती है। लेकिन यदि ऐसा ही रहा तो यह वंशपरम्परा की कला नष्ट हो जानेवाली है। कुम्हार और उसकी कला को फिर पहले का स्थान प्राप्त कराने के लिए बोर्ड ने एक स्वतंत्र विभाग बनाया है। निष्णातों के द्वारा मिट्टी, रंग तथा आकृतियों के नित नये नमूनों की शोध की जाती है और दैनिक आवश्यकता की कई वस्तुएं मिट्टी की बनवा के चालू कराने के प्रयत्न होते रहते हैं।

बम्बई की दो सुशिक्षित महिलाओं-श्री मालती बेन झवेरी और श्री प्रभा बेन शाह ने कुम्हार काम की ऊंचे दर्जे की शिक्षा प्राप्त की है। उन्होंने भांति-भांति की बनावटों के नये नमूने बनाने का काम कुम्हारों को सिखाया, उन नमूनों का कलापूर्ण सूची-पत्र तैयार कर दिया और सहकारी समितियों के मार्फत उनके माल की निकासी का प्रबन्ध कर कई कुम्हारों को रोजी कमाने के रास्ते पर लगा दिया।

एक बार दीवाली के अवसर पर अनेक प्रकार की दीपिकाएं तैयार कराके धन तेरस के दिन उनका एक बड़ा ढेर खादी भवन में बिक्री के लिए रक्खा गया। शाम तक एक भी दीपिका शेष न रही और कितने लोग वापस लौट गये। तो यह एक छोटी सी बात लेकिन यह उदाहरण इस बात की ओर संकेत करता है कि यदि विचारपूर्वक योजना बना के काम किया जाय तो मृत्यु की साँसें गिनता हुआ यह उद्योग भी जीवित रह कर अनेक कुम्हारों को रोजी दिला सकता है और साथ ही जनता को कुदरत की कलापूर्ण कारीगरी के दर्शन भी कराता रह सकता है।

आटे की चक्की

कुछ ही वर्ष हुए अपने हरेक घर में चक्की हुआ करती थी। उससे सबको ताजा आटा खाने को मिलता था। चक्की कई निराधार विधवाओं का आजीवन रोजी कमाने का साधन बनी रहती थी। आटा पीस-पीस कर लड़के को पढ़ा लेने के अनेक किस्से भला किसने नहीं सुने होंगे? लेकिन आजकल चक्की की मधुर आवाज सुनने को नहीं मिलती। इसलिए निःसत्व आटा हमारे भाग्य में लिखा गया है। परिश्रम से बचने की लालच से घर में आटा पीसने का काम लगभग भुला दिया गया है। इस काम के निष्णातों ने चक्की पुनः चालू कराने की योजना बनायी है। संशोधित चक्की में लोहे की कीली मानी के बीच में लोहे की गोली जमा कर चक्की को चलने में हलका बना दिया गया है। इसे बड़े-बड़े शहरों में भी खादी भण्डारों में बिक्री के लिए रख सकते हैं और जनता उसे आसानी से प्राप्त कर सकती है। अब तो बाहरी स्थानों से भी चक्की मंगाने के आर्डर आने लगे हैं। सुविधा के साथ साथ खरीदनेवालों को कुछ रियायतें देने का भी बोर्ड ने निश्चय किया है।

मधुमक्खी पालन

हमारे जीवन में शहद का भी एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। बालक का जन्म होते ही उसकी जीभ पर शहद लगाने की प्रथा अनिवार्य है। लेकिन इन दिनों शहद का मुख्य उपयोग दवा के रूप में रह गया है। भोजन या लाभकारी पेयों में उसका स्थान हमने भुला दिया है। इसका एक कारण यह भी है कि शहद इतनी मात्रा में मिलता ही नहीं है। दूसरा कारण यह है कि चूँकि आजकल आम तौर पर शहद निकालने में बहुत सी मक्खियां मर जाती हैं तथा उसे निकालने की रीति भी गन्दी होती है जिससे यह धंधा आबरूदार नहीं गिना जाता और इसी कारण केवल थोड़े से कंजर जाति के लोगों में रह गया है। बोर्ड ने इसको आबरूदार बनाने के हेतु मधुमक्खी पालने की वैज्ञानिक रीति का प्रचार शुरू किया है। इस रीति से मक्खियाँ पाली जाकर उनसे एक विशेष रीति से प्राप्त हुए शहद को गांधीजी अहिंसक शहद कहा करते थे क्योंकि उसके छत्ते को निकालने में न मक्खियाँ मरती थीं और न उनके छत्ते या अंडे-बच्चों को ही हानि पहुंचती थी। पश्चिम देशों में तो मधुमक्खी पालन के विषय पर विपुल

साहित्य प्राप्य है। यहाँ लोग खेती के एक सहायक धंधे के तौर पर मधुमक्खी पालने का उद्योग कर लाभ उठाया करते हैं। वैसी ही स्थिति इस देश में उत्पन्न करने के लिए गांधीजीने बहुत से प्रयोग किये थे। अब बोर्ड की ओर से सारे देश में इस उद्योग को जमाने की व्यवस्था की जा रही है। प्रत्येक खादी भण्डार में अहिंसक शहद बेचने के लिए रखा जाता है। इस उद्योग का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था भी बोर्ड ने की है।

हाथ कुटे चावल

मिल में पालिश किये चावलों ने हाथ के कुटे हुए चावलों को गायब सा कर दिया। साथ ही भोजन में से पौष्टिक तत्व भी जाता रहा। जनता की इस हानि को दूर करने के लिए बोर्ड ने हाथ-कुटा चावलों का एक विभाग शुरू किया है। बंगाल, बिहार आदि प्रदेशों में कमोद नाम का धान पैदा होता है, इसलिए वहाँ हाथ कुटाई की प्रथा जीवित रही है। परन्तु गृह उद्योग के तौर पर नहीं। उसे फिर घर-घर में चालू कराने के उद्देश्य से बोर्ड ने एक जाँच समिति बनायी थी। समिति ने जाँच पूरी करके चावल की मिलें बन्द करा देने की शिफारिस की। वह तो जब होगा तब होगा। प्रत्येक खादी भंडार के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वहाँ हाथ-कुटे चावल बिक्री के लिए रखे जावें, जनता को उनका उपयोग करने के लिए समझाया जावे और उनका उपयोग क्रमशः बढ़ाया जावे।

चर्मोद्योग

चर्मोद्योग की योजना द्वारा बोर्ड इस उद्योग को वैज्ञानिक ढंग पर विकसित करना चाहता है। कुम्हार की तरह ग्रामीण मोची भी अपना तेज खो बैठा है। कारखानों के चमकीले लेकिन तकलादी जूते, चप्पल वगैरह बाजार में सब का ध्यान खींच लेते हैं। इसलिए हमें जगह-जगह कारखानों में बनी हुई चमड़े की वस्तुओं की दुकानें बहुत दिखाई देने लगी हैं। इसके विरुद्ध बोर्ड मोची को संरक्षण देने की शिफारिस करता है। मोचियों की सहकारी समितियाँ बनाके उनको टिकाये रखने के प्रयास किये जा रहे हैं। विलायत भेजे जानेवाले चमड़ों और हड्डियों का उपयोग देश में ही कर लेने की बोर्ड की योजना भी अमल में आ रही है।

अखाद्य तेलों का साबुन

साबुनसाजी इस देश का एक प्राचीन गृह उद्योग था। साबुन बनाने के जो कारखाने बड़े पैमाने पर खुले उनमें खाद्य तेल उपयोग किये जाने लगे। बोर्ड ने खाद्य तेलों की बजाय अखाद्य तेलों से साबुन बनाने की योजना बनायी है। जंगलों में करोड़ों रुपयों के अखाद्य तेलों के बीज यों ही नष्ट होते रहते हैं। उनका उपयोग करके देश की कुदरती सम्पत्ति बढ़ाने का यह एक प्रयास है। निबोरी, करंज, महुवा आदि के तेलों का साबुन बनाने का प्रशिक्षण बोर्ड की ओर से दिया जा रहा है और इस तरह का साबुन खादी भंडारों से खरीदा जा सकता है।

ग्रामीण दियासलाई

मुझे बचपन की याद है कि दियासलाई के बक्स एक पैसे में दो मिला करते थे। तब यह उद्योग लगभग गृह उद्योग जैसा था। धीरे–धीरे यह उद्योग बड़े पैमाने के कारखानों के हाथ में चला गया। पहले मुख्यतया हमलोगों ने स्वीडन के बक्स इस्तेमाल करने शुरू किये। फिर जब स्वदेशी आन्दोलन चला तब विलायतवालों ने हिन्दुस्तान में आ कर अपने कारखाने खोले तथा स्वदेशी कारखानों को भी खरीद लिया। कारखानों के देशी मालिकों को नौकरी पर रख लिया। गृह उद्योग तो नष्ट हो ही चुका था।

आज कल उपयोग में आनेवाली लगभग ९० प्रतिशत दियासलाइयाँ इन बड़े कारखानों की बनी हुई होती हैं। यदि कोई व्यापारी साथ में किसी अन्य प्रकार की दियासलाई बेचने को रखता तो कारखानेवाला अपना माल बिलकुल न देने की धमकी देता। ऐसी परिस्थितियों में बंगाल के सुविख्यात रसायनशास्त्री श्री सतीशचन्द्र दासगुप्ता ने ग्रामीण दियासलाई के गृह उद्योग को चलाने का प्रचंड पुरुषार्थ किया। वे बोर्ड के भी सदस्य हैं। इस उद्योग को स्थापित करने के लिए उन्होंने युवकों को लज्जित करने का रात दिन अथक परिश्रम किया और अपने परिश्रम का निचोड़ एक पुस्तकाकार में लिख कर प्रकाशित किया। जब ग्रामीण दियासलाई के उद्योग की योजना अपना कर बोर्ड ने बड़े उद्योग पर अंकुश रखने का निश्चय किया तब दूसरे ही दिन शेयर बाजार में 'विम्को के शेयरों' के भाव १०–१५ प्रतिशत उतर गये। बाद में श्री सतीश बाबू ने अपनी योजना को सक्रिय रूप देना शुरू किया। प्रशिक्षण

की व्यवस्था कर ली और प्रशिक्षत कार्यकर्त्ताओं द्वारा ग्राम दियासलाई उत्पादन कई केन्द्र खुल गये।

सलाई के लिए कारखानेवाले एक अमुक प्रकार की लकड़ी ही पसन्द करते जो प्रायः विदेशों से ही आती थी। जिससे भारत को उससे कोई लाभ नहीं होता था। भारत के अनेक भागों में बांस के जंगल देख कर श्री सतीशबाबू ने बाँस तीलियों की दियासलाई बना लेने की शोध कर ली। इससे दियासलाई का एक इत्थू उद्योग फिर से एक गृह उद्योग के तौर पर जीवित हो गया। देश भर की संस्थाएं और खादी भंडार ऐसी दियासलाइयों की बिक्री में मदद करने लगे।

ताड़गुड़

भारत में ताड़ों और खजूरों के वन के वन खड़े हैं। यह विपुल संपत्ति किसी उपयोग में आये बिना नष्ट होती रहती है। श्री गजानन नायक ने अनेक वर्षों तक प्रयोग करके ताड़ और खजूर के रस में से गुड़ बनाने की रीति ढूंढ निकाली। उसके शिक्षण की व्यवस्था चालू होने के बाद अब ताड़गुड़ काफी तादाद में बनने लगा है। ताड़गुड़ का उपयोग औषधि में भी होता है। उसके ताजे रस को नीरा कहते हैं। नीरा का एक पौष्टिक तथा स्वादिष्ट पेय के रूप में किया गया प्रचार भी सफल रहा है। नीरा की बिक्री से ताड़गुड़ के केन्द्र अच्छी खासी आमदनी कर लेते हैं। इसी रस में से गुड़ और शक्कर तक बनायी जाती है। उसकी आइसक्रीम तथा कई प्रकार की मिठाइयाँ बड़ी स्वादिष्ट बनती हैं। इन वस्तुओं की बिक्री खादी भण्डारों में की जाती हैं। बंगाल तथा मद्रास में यह उद्योग भलीभांति विकसित हो गया है। देश के अन्य भागों में भी जहाँ कहीं ताड़ या खजूर बड़ी संख्या में हैं, उनका ताड़गुड़ के लिए उपयोग किया जाता है।

हाथ कागज

हिन्दुस्तान में हाथ कागज का उद्योग बहुत पुराना है। हाथ का बना और घोटा हुआ कागज प्राचीन काल के दस्तावेजों में इस्तेमाल किया हुआ मौजूदा रहा है। प्रारम्भ में इस देश में कागज हाथ से ही बनाया जाता था। कागज की मिल शुरू होते ही कागदी का उद्योग जाता रहा। पहले

कागज के बनानेवाले कागदी कहलाते थे। आज कल मिल बना कागज बेचनेवाले कागदी कहलाते हैं। स्वदेशी की भावना को छोड़ कर हाथ कागज की जो किस्में उपलब्ध हैं उनके उपयोगी होने के कारण यह उद्योग कहीं-कहीं पर टिक रहा है। लेकिन धंधे की दृष्टि से तो यह मर चुका ही माना जाता है। कागज बनाने के लिए कच्चा माल हिन्दुस्तान भर में पाया जाता है। बापू ने ग्रामोद्योग संघ के द्वारा इस उद्योग को जीवित करने के लिए लम्बे समय तक प्रयोग कराये। अब बोर्ड ने उस काम को शुरू किया है। हाथ कागज उत्पत्ति केन्द्र काफी अच्छे पैमाने पर चालू कराये हैं और वहां हाथ कागज बनाने की तालीम दी जाती है। वहां अच्छे प्रकार का कागज बनने लगा है। कई कागज तो इतने सुन्दर और मजबूत बनते हैं कि वे दस्तावेजों के लिए बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं। बोर्ड की ओर से जो खादी-हुन्डी छपाई जाती हैं वे हाथ कागज पर ही छपती हैं। सरकारी विभागों में कई तरह का हाथ कागज व ब्लाटिंग पेपर उपयोग में लाया जाने लगा है जिससे इस काम में नये कारीगरों की संख्या बढ़ती जा रही है। अच्छे प्रकार के हाथ कागज की माँग जनता में भी बढ़ रही है।

खाँडसारी

इस देश में गन्ने के रस में से गुड़ और शक्कर बनाने का काम अनन्त काल से चलता आ रहा है। इस शक्कर को खाँडसारी के नाम से पुकारते हैं। इसमें गन्ने के गुण कायम रहते हैं। परन्तु अंग्रेजों के भारत में आने के बाद यहाँ शक्कर की मिलें खुलीं जिनमें चमकदार दानेदार शक्कर बनने लगी। उसमें गन्ने के गुण प्रायः नष्ट हो जाते हैं। केवल मिठास शेष रह जाती है। यह शक्कर शरीर के लिए निःसत्व और दुष्पाच्य साबित हो चुकी है। इन मिलों से खांडसारी के प्राचीन उद्योग को बहुत हानि पहुँची है। उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल में अभी किसी हद तक यह चल रहा है। बोर्ड इस उद्योग को फिर जमाने के लिए संशोधन कर रहा है। जनता खाँडसारी का अधिकाधिक उपयोग कर इस उद्योग को बल प्रदान कर सकती है जिससे भिन्न-भिन्न इलाकों में पैदा होनेवाले गन्ने का पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सके।

पच्चीसवाँ प्रकरण

सघन क्षेत्र योजनाएँ

सघन क्षेत्र का अर्थ है 'कई एक गाँवों का एक समूह' जिसे हर प्रकार से स्वावलम्बी और सुदृढ़ बनाने की योजना बोर्ड द्वारा चलायी जा रही है। ऐसे क्षेत्र में काम करने के लिए कोई मुद्दत निश्चित नहीं की जा सकती। लोकजागृति, दीर्घ दृष्टि और आत्मविश्वास पैदा करके प्रजा की शक्ति बढ़ायी जाती है। ऐसी योजनाएँ वहीं सफल हो सकती हैं जहाँ निष्ठावान कार्यकर्ता मिलें जो उसी क्षेत्र में काम करते करते मर मिटने को तैयार हों। गाँव की आवश्यकता की सारी चीजें गाँव में तैयार करने का ध्येय प्राप्त करना है। सघन क्षेत्र में कार्यारम्भ करने के पहले वहाँ के प्रत्येक गाँव की जाँच करायी जाती है। उसके बाद कच्चे माल को पक्के माल की शक्ल में परिणत करने का काम शुरु किया जाता है। जमीन का पूरा-पूरा उपयोग कर लेना होता है। जिस-जिस वस्तु की जरूरत पड़े उसे उसी गाँव या क्षेत्र में उत्पन्न करा लेने का प्रबन्ध करा लेना होता है। घर-घर में चरखा चले, सूत गाँव में ही बुना जाय, सरंजाम भी गाँव के कारीगर ही बनाते हों, तेल बीजों का उपयोग भी उसी रीति से होता हो। इस योजना के अनुसार गाँव के हर एक कारीगर तथा मजदूर को कोई न कोई काम सिखा कर और काम देकर उसे अपने पैरों पर खड़ा कर देना होता है। यदि गाँव के कारीगर काम के अभाव में गाँव छोड़ गये हों तो उन्हें वापिस बुला कर गाँव में उनके काम की व्यवस्था जमा के उन्हें फिर गाँव में बसा दिया जाता है।

बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था भी बुनियादी तालीम की पद्धति से करा दी जाती है। इस आदर्श स्थिति को सामने रख कर इसे प्राप्त करने का प्रयास होता है। गाँव में से नकद पैसे का चलन बिलकुल उठ जाय और उसका स्थान वस्तु-विनिमय ले ले और गाँव

की सम्पत्ति गाँव में ही रह सके। गाँव का एक भी काम करने योग्य व्यक्ति बेकार न रहे फलतः भूखा-नंगा रहे, निरक्षर न रहे और गाँव में किसी तरह का झगड़ा-टंटा खड़ा होने की परिस्थिति न रहे। इस योजना के गांवों में घर-घर में गाय का होना अपेक्षित है जिससे दूध होता है। उस गाय की सही अर्थ में सेवा यानी पूजा होती हो जिससे सब गाँववाले शुद्ध दूध-घी प्राप्त करते हों। इनमें मिलावट कि बातें भूतकाल की कहानी रह जाएँ। सब गाँववाले आपस में एकरूपता का अनुभव करते हों, ऊँच नीच का भाव मिट गया हो, छुआछूत का नाम निशान तक न रहा हो। यह सब हो तो यह कहने की जरुरत ही नहीं कि गाँव में हर तरह का शोषण मिट गया है और गाँव का हर व्यक्ति गाँव को अपना मानता है तथा गाँव की भलाई के लिए मर मिटने को तत्पर रहता है।

सघन क्षेत्र योजना की कल्पना बोर्ड के एक सदस्य श्री झवेरभाई पटेल की है। इस कल्पना को मूर्त रूप देने में उन्हें अनेक कार्यकर्त्ताओं का सहयोग प्राप्त हुआ है। अभी यह कहने का समय नहीं आया है कि यह कल्पना किस हद तक साकार हो चुकी है। अभी देश भर में जितने सघन क्षेत्र कायम किये गये हैं वे माता के गर्भ में बढ़ते हुए बालकों के समान हैं। दुनिया में अवतरित होने के पहले उन्हें अनेक यातनाएँ भुगतनी पड़ सकती हैं। तब कहीं आदर्श की झांकी मिल सकेगी। अभी तो यह सिर्फ एक मधुर और उत्कृष्ट प्रकार का स्वप्न है। ऐसा नया समाज बनाने का पुरुषार्थ भी कैसा विकट लेकिन भव्य है। बालकों को ये बातें पुराणों के सतयुग के वर्णन जैसी मालूम होंगी। लेकिन यदि हमारा पुरुपार्थ अनवरत और ज्वलन्त रहा तो हमारा यह स्वप्न सत्य हो कर रहेगा। हम सतयुग को लाकर रहेंगे। तब हमारे यहाँ स्वस्थ और सुखी समाज की रचना हो चुकी होगी और तब इस बोर्ड जैसी संस्थाओं की भी जरुरत नहीं होगी, उनका रामराज्य में विलीनीकरण हो चुका होगा।

छब्बीसवाँ प्रकरण

पिछले ३५ वर्षों में खादी बिक्री का काम करते-करते तरह-तरह के अनुभव हुए हैं जिनसे कई तरह की योग्यता हासिल हो गयी है। प्रारम्भ में कंधे पर खादी के थान डाल कर घर-घर घूम कर खादी बेची जाती थी। वैसा कर लेने पर एक छोटी दूकान खोल लेने की स्थिति आई। इसका फर्नीचर और सजावट खर्च उस समय बिलकुल कम यानी नाम मात्र का था। धीरे-धीरे बिक्री स्थिर हो कर बढ़ने लगी। इसी के साथ खादी में विविधता भी आती गयी। तब वह समय आया जब सुव्यवस्थित और सुशोभित खादी भण्डारों की रचना होने लगी।

प्रारम्भ में तो मात्र खादी की भावनावाला कोई व्यक्ति मिलता उसी भाई या बहिन को खादी भंडार पर बैठा देते थे। बिक्री या व्यापार का बिलकुल अनुभव न हो तो भी चल जाता था। अब तो व्यवस्थित ढंग से विक्रेता की तालीम प्राप्त करने की सुविधा हो गयी है। सब लोग अब यह समझने लगे हैं कि खादी भी एक तरह का कपड़ा है। और उसे खपाने की भी एक कला है। इसमें सबसे बड़ी बात यह है कि खरीदने आनेवाले की जरूरत समझ कर उसके सामने भाँति-भाँति का माल रखना और उसे सन्तोष देना ताकि वह खुशी-खुशी अपनी जरूरत की चीज खरीद ले जाय। विक्रेता को यह ज्ञात होना चाहिए कि ग्राहक को अपनी जरूरत पूरी करने के लिए किस प्रकार की किस अर्ज की और कितनी खादी लेनी ठीक होगी। कितने समय में कौन सी खादी किस मात्रा में खपती है। उसका समय पर उतने प्रमाण में संग्रह करने की व्यवस्था आदि यह सब ज्ञान होना आवश्यक है। खादी की विभिन्न किस्में भंडार में कहाँ और कैसे सजानी चाहिए जिससे ग्राहक आसानी से उन्हें देख कर ऐसी वस्तुएं भी खुशी से खरीद कर ले जाय जिनको खरीदने के इरादे से वह न आया हो। ग्राहकों के साथ सभ्यता का बर्ताव तो हो ही उसके उपरान्त वह अपनी पसन्दगी कर सकने के लिए अनेक प्रकार की जातें निकलवा कर अन्त में

कुछ भी न खरीदे तो भी विक्रेता के मुख पर ज़रा सी शिकन दिखाई न देनी चाहिए। विक्रेता में ये गुण विशेष मात्रा में होने चाहिएं: विनय, मधुर और परिष्कृत ढंग की बोलचाल, सफाई, स्वच्छता, नियमितता और सतर्कता। माल जरूरी मात्रा में समय पर खरीदा जाकर भंडार में आता रहे इस प्रकार की व्यवस्था का ज्ञान और विवेक भी विक्रेता में होना जरूरी होता है। ग्राहक जरूरत होने पर अपने भंडार पर ही पहुँचे, इस प्रकार की छाप उस पर पहले अवसर पर पड़नी चाहिए। चाहे व खरीदे या न खरीदे लेकिन न तो उसका चित्त दुखे, न विश्वास कम होने पावे, इसका खयाल विक्रेता को हमेशा रखना चाहिए। इन सब बातों का बिक्री पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

अब अम्बर के कारण खादी की उत्पत्ति सारे देश में तेजी से बढ़ेगी, इसलिए पहले ही से विचारपूर्वक उसकी बिक्री की व्यवस्था भी देश भर में कर रखना उचित है। भण्डारों की संख्या बढ़ेगी। हर एक गाँव में एक-भंडार या एजेन्सी भी हो जाय तो बढ़ती हुई उत्पत्ति का सामना किया जा सकेगा।

खादी के नये खरीददार बनाने की भी जरूरत पैदा हुई है। इसके लिए लोक-सम्पर्क तथा बिक्री ज्ञान बढ़ाना होगा।

अंग्रेज जब पहले पहल भारत में आये थे तब इस बात का बड़ा ध्यान रखते थे कि उनकी कमाई का एक पैसा भी इस देश में न रह जाय। यहाँ कमाई हुई प्रत्येक पाई वे अपने देश में पहुँचा देना चाहते थे। अपनी जरूरत की सब चीजें इंगलैंड से मंगा कर उन्होंने यहाँ स्थान-स्थान पर स्टोर खोल लिये थे। ऐसी ही एक बड़ी दुकान बम्बई के सघन भाग में 'ह्वाइट वे लेडला' के नाम से खुली थी। वह खूब जम गई थी।

चाहे कितने मँहगे दामों से वस्तु मिले लेकिन अंग्रेज लोग अपनी जरूरत का माल वहीं से खरीदते थे। बाद में ऊँची स्थिति के भारतीय जन भी वहाँ माल खरीदने में गौरव अनुभव करने लगे थे। पश्चिम के देशों में बिक्री कला का विकास खूब हुआ है। वहाँ तो बिक्री शास्त्र की रचना भी हो चुकी है। इसका बहुत बड़ा साहित्य वहाँ उपलब्ध है। इसके उपरान्त पहनाव ढबों में समय-समय पर जो तब्दीलियाँ होती रहती हैं उनके साथ-साथ नई पसन्दगी को सविवरण प्रकाशित करनेवाले सामयिक पत्र भी वहाँ छपते और बिकते हैं। इन्हीं में बिक्री की नयी-नयी

तरकीबों पर भी प्रकाश डाला जाता रहता है। दुकान सजाने का भी वहाँ एक शास्त्र है। कौन सी वस्तु किस स्थान में सजाई जावे जिससे देखनेवाला आकर्षित हो, इस विषय की भी वहाँ अनेक पुस्तकें हैं। ग्राहक को माल खरीदने के लिए ज्यादा समय तक रुकना पड़े तो उसके आराम से बैठने तथा हाजतें पूरी करने के स्थान भी दुकानों में होते हैं। ऐसी सुविधाओंवाला एकाध खादी भंडार नमूने के तौर पर कहीं खुले तो देश भर के कार्यकर्त्ताओं और खादी प्रेमियों के लिए वह तालीम का स्थान बन जावे।

बहुत समय से मैं यह कल्पना कर रहा था, इतने में अंग्रेजों के भारत से जाने के कारण 'ह्वाइट वे लेडला' ने भी अपनी दूकान खाली कर दी। इस दूकान को खादी के लिए प्राप्त करने का प्रयत्न मैंने शुरू किया। दूकान का क्षेत्रफल लगभग १७,००० वर्ग फीट है। सामने के भाग में बड़ी-बड़ी शोभनीय काँच की (विन्डो केस) आलमारियाँ सजी हुई हैं। केन्द्रीय सरकार ने यह दूकान बोर्ड के काम के लिए प्राप्त कर बोर्ड को सौंप दी। फिर इस दूकान के लिए आवश्यक फर्नीचर, शोभा के साधनों और कार्यकर्ताओं की संख्या आदि के अंक तैयार हुए और इस बड़े खर्च को पूरा करने के लिए कितनी बिक्री आवश्यक होगी, यह भी सोचा गया गया। इतनी विशाल बिक्री क्या हो सकेगी ? इस प्रश्न से सब लोगों को चिन्ता होती थी। परन्तु खादी और ग्रामोद्योगों का क्षेत्र इतना व्यापक है कि ध्यानपूर्वक प्रयत्न किये जायँ तो अवश्य सफलता मिले, यह मेरा विश्वास था। एक समय था जब इसी ह्वाइट वे लेडला के दरवाजे पर हजारों की संख्या में स्वयंसेविकाओं ने विलायती माल की खरीद बन्द करने के लिए धरने दिये थे, मार खाई थी और पकड़ी तक गयी थीं। अब उसी मकान में खादी और ग्रामोद्योग का एक नमूनेदार भवन (एम्पोरियम) बना दिया गया है। जिस स्थान से हिन्दुस्तान की बहुत बड़ी धनराशि विलायत भेज दी जाती थी उसी स्थान से आज शहरी धन की एक मोटी राशि गाँववालों के लिए गाँवों में भेज दी जाती है।

सन् १९०६ में स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में बम्बई स्वदेशी कोआपरेटिव स्टोर में ११ वर्ष तक रह कर मैंने जो अनुभव प्राप्त किया था उस अनुभव की पूँजी इस भवन की रचना करने में मेरे बड़े काम आई। वह स्वदेशी स्टोर भी कुछ छोटा न था। टाइम्स आफ इन्डिया की इमारत में नीचे १५,०००

वर्ग फीट में इस स्टोर का फैलाव था। उसमें अनेक विभाग थे, सैकड़ों विक्रेता काम करते थे। उसकी बिक्री और आय भी अधिक थी। एक बार तो उस स्टोर के शेयरों के भाव बाजार में दूने हो गये थे। उस विशाल अनुभव के दृश्य मेरी आँखों के सामने इस समय ताज़े होने लगे। जब मैं इस बात पर गौर करने लगता कि मैं कितना बड़ा जोखम और जवाबदारी उठा रहा हूँ तब कुछ-कुछ घबराहट तो होती थी। साथियों को अपनी बात समझाने में मुझे मेहनत करनी पड़ती थी। अन्त में मेरी साहसिक वृत्ति ने ही मुझे संभाले रखा और मेरे अनुभवों के कच्चे धागों पर विश्वास रख कर बोर्ड ने यह भवन शुरू करने का निर्णय कर लिया।

साथियों ने मुझसे आग्रह किया, "उस समय आप भरी जवानी में थे और अब वृद्धावस्था में हैं : देखिये कहीं गोता न खा जाइयेगा।" जिससे दूसरे विभाग की रचना सजावट बिक्री की अपेक्षा वगैरह सारी बातें में बारीकी से सोचता गया और मुझे विश्वास हो गया कि सफलता अवश्य मिलेगी। इतना बड़ा जोखम मैं बापू के खादी-काम के विकास के लिए उठाने को तत्पर हुआ।

मेरा प्रारम्भ किया हुआ यह काम चलता रहे और फैलता रहे इसके लिए मैंने अपना वारिस ढूँढने के लिए नजर दौड़ाई तो मेरी दृष्टि भाई नवलराय पर स्थिर हुई। उसका जन्म स्वदेशी आन्दोलन के समय में हुआ था। उनका शिक्षण उस समय प्रारम्भ हो रहा था जब गांधीजी स्कूल और कालेजों को खाली करके विद्यार्थियों को बाहर बुला रहे थे। इसलिए उनका शिक्षण एक राष्ट्रीयशाला में ही हुआ था। बम्बई में शाला का पाठ्यक्रम समाप्त करके वे गुजरात विद्यापीठ में आगे की पढ़ाई के लिए पहुँचे। दाँडी कूच के समय वे ८० सैनिकों में से एक थे। ऐसा भावनाशील युवक मेरे काम को अधूरा नहीं छोड़ेगा, यह मुझे यकीन था। भवन की रचना का काम उन्होंने संभाल लिया और मैं दिल्ली की प्रदर्शिनी के लिए वहाँ जाकर कई महीनों का समय दे सका। भवन की रचना पूरी हो गई थी। उद्‌घाटन क्रिया समीप थी, इतने में वे भाई हृदय रोग के आक्रमण से हमारे बीच में से अचानक उठ गये। भवन के उद्‌घाटन के निमित्त निमंत्रण पत्रिकाएं वे भेज चुके थे लेकिन उद्‌घाटन के समय वे स्वयं ही वहाँ नहीं रहने पाये। एक बार तो यह विचार हुआ कि

इस अवसान के कारण उद्घाटन विधि को कुछ स्थगित किया जाय, लेकिन फिर निर्णय सही हुआ कि यह वीर स्वयं १९वीं जुलाई को भवन का उद्घाटन कराने की तीव्र इच्छा रखते हुए सिधार गया है, इसलिए उसी दिन उद्घाटन करके उसकी इच्छा की पूर्ति करनी चाहिए।

बम्बई प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री मोरारजी देसाई के कर कमलों से भवन की उद्घाटन क्रिया सम्पन्न हुई। उन्होंने स्व. नवलराय लेराजाणी को श्रद्धांजलि अर्पित की और यह कह कर कि इस महान कार्य की पूर्णता के लिए इस बत्तीस लक्षणों से सम्पन्न युवक का बलिदान हुआ है। उन्होंने भवन को खोल दिया, फिर तो हजारों दानवीर उमड़ पड़े और उसी समय अल्पकाल में ही २१ हजार रुपयों की बिक्री हो गई। कई लोगों के मन में यह शंका होना सम्भव था कि इतने बड़े भवन का खर्च उठाने के लिए यहाँ के बिक्री भाव महंगे होंगे। ऐसी शंका को स्थान न मिले, इसलिए यह घोषणा की गयी कि बम्बई कालबादेवी खादी भंडार जिन भावों से माल बेचता है उन्हीं भावों में भवन में माल मिला करेगा।

भवन खुल जाने पर कालबादेवी भंडार को क्षति पहुँचेगी, शायद बंद भी करना पड़ जावे, ऐसा सुनने में आता था, लेकिन अनुभव से यह सिद्ध हुआ कि भवन के कारण कालबादेवी भंडार की बिक्री बिलकुल नहीं घटी है। जिसका अर्थ यह हुआ कि भवनने अपने नये ग्राहक कायम किये हैं। भवन खादी और ग्रामोद्योगों की वस्तुएं खरीदने का स्थान मात्र ही नहीं रहा है बल्कि देश की कला पूर्ण और अद्भुत कारीगरी की वस्तुओं का संग्रहलय भी हो गया है। कुछ न भी खरीदना हो तो भी इसे देखे बिना न एक भी बम्बई निवासी चूका है और न एक भी प्रवासी चूकता है।

विदेशी यात्रियों के लिए यह एक विशेष दर्शनीय स्थान बन गया है। भवन की कुल बिक्री का लगभग एक दशांश खादी ग्रामोद्योगों में श्रद्धा रखनेवालों के हाथों होता है। बाकी नव दशांश खादी और ग्रामोद्योगों की वस्तुओं की बिक्री बिलकुल नये ग्राहकों से ही होती है। वे यहां खादी खरीदने के विशेष हेतु से नहीं लेकिन अपनी जरूरत का माल खरीदने के लिए बाजार की किसी भी सामान्य दूकान की तरह ही यहाँ आ जाते हैं और खादी तथा ग्रामोद्योगों की वस्तुएँ खुशी से ले जाते हैं। ह्वाइट वे

लेडला के कई पुराने परिचित भी कभी–कभी पहुँच जाते हैं और वे भी संतुष्ट हो कर कुछ–न–कुछ खरीद कर ले जाते हैं। भवन की ४० प्रतिशत बिक्री सूती–खादी से होती है। कई लोगों की रसवृत्ति को खादी अन्य सामान्य कपड़े की भांति पसन्द पड़ जाती है, ऐसे ग्राहकों के हाथ भी खादी बिकती है।

भवन का संचालन बोर्ड ने सीधा अपने कब्जे में न रख कर ऐसे काम की निष्णात संस्था बम्बई उपनगर जिला ग्रामोद्योग संघ को सौंप दिया है। इस संस्था के मंत्री श्री इन्दुभाई शाह बोर्ड की नीति और बजट को ध्यान में रखते हुए खूब निष्ठा से काम करते हैं। भवन की खिड़कियों (शो केस) की सजावट भी भवन के लिए एक महत्व का अंग बन गई है। रास्ते में चलनेवाले हर किसी व्यक्ति का ध्यान उनकी ओर आकर्षित होता है और वह अन्दर जाकर देखने को प्रेरित होता है। बम्बई में ऐसे बहुत से कुटुम्ब हैं जिन्होंने यह नियम बना लिया है कि वे अपनी जरूरत का कुल सामान फोर्ट विस्तार (फोर्ट एरिया) में ही खरीदेंगे। ऐसे ग्राहकों का लाभ भवन को मिलता है। विदेशी यात्रियों के मार्गदर्शन के लिए जो सरकारी विभाग नियत है उस विभाग के साथ भवन विशेष ध्यान देकर सम्पर्क बनाये रखता है। जब तक भवन की स्थापना नहीं हुई थी तब तक के समय में कई विदेशी यात्री जब गांधी कपड़े की मांग करते थे तब व्यापारी लोग उन्हें जो चाहे कपड़ा भिड़ा देते थे। लेकिन अब उनको जो चाहिए वही सच्चे रूप में मिल जाता है। भारत की याद के लिए भी वे लोग भवन में से अपने साथ कुछ–न–कुछ ले ही जाते हैं।

कुछ दिन हुए अमेरिका से ऐसे यात्रियों का एक जहाज बम्बई आनेवाला था। सरकारी विभाग की ओर से सूचना मिली की जहाज शनिवार को पहुँचेगा और रविवार को चला जायगा, इसलिए शनिवार को ही यात्रियों के लिए सुविधा रखी जाय। शनिवार को सुबह ही पहला झुंड आ पहुँचा। फिर तो तमाम दिन भवन में उनकी भीड़ रही। उसी एक दिन की बिक्री २३ हजार रूपयों की हुई थी।

बहुधा विदेशी महिलाएँ भारतीय महिलाओं के पहनाव की नकल करने की ओर आकृष्ट हो जाती हैं। लेकिन उन्हें साड़ी पहनने का तरीका नहीं आता। ऐसी महिलाओं के लिए भवन के महिला विभाग में सुविधा रखी

गई है। यहाँ ऐसे यात्रियों को पहनने का तरीका सिखाया जाता है। इसलिए नमूने के तौर पर हर कोई एक दो साड़ियाँ ले ही जाता है।

भवन के प्रथम वर्ष का बजट भाइ नवलराय जेराजाणी ने तैयार किया था। उसमें वर्षान्त में एक लाख रुपये की हानि का अन्दाज रक्खा गया था। परन्तु भविष्य में ज्यों-ज्यों भवन की बिक्री बढ़ेगी वह स्वावलम्बी हो जायगा, ऐसी उनकी मान्यता थी। लेकिन पहले ही वर्ष के कार्य से भवन ने खादी बोर्ड के तमाम सदस्यों और सरकारी कर्मचारियों को आश्चर्यचकित कर दिया। प्रथम वर्ष के हिसाब में भवन का मासिक भाड़ा दस हजार रुपये के हिसाब से जमा खर्च किया गया था। बाद में सरकारी अधिकारी द्वारा मासिक भाड़ा ११॥ हजार रुपये ठहराया गया, इसलिए प्रथम वर्ष में इतनी सी हानि रह गयी है। वरना दोनों पलड़े बराबर हो गये थे। कुछ सरकारी कर्मचारियों ने पूछा कि यह परिणाम क्यों कर आया? बोर्ड के मंत्री श्री प्राणलाल कापड़िया ने उत्तर दिया कि भवन का संचालन व्यापारिक रीति-नीति से किया गया है। व्हाइट वे लेडला के मैनेजर को चार हजार रुपया मासिक वेतन मिलता था उसके उपरांत भत्ते भी मिलते थे। इस भवन के मैनेजर को ४२५) मासिक वेतन दिया गया है। सरकारी कर्मचारी ने पूछा, "परन्तु भवन के मैनेजर की कार्यकुशलता कितनी है?" उत्तर मिला, "प्रथम वर्षान्त के परिणाम के जितनी।" भवन की ऐसी सफलता से खादी बिक्री के लिए नयी आशा उत्पन्न हुई। दूसरे किसी भी शहर में इस भवन की पद्धति पर काम करने से बिक्री अवश्य बढ़ायी जा सकेगी, ऐसी प्रतीति हो गयी। सारे देश में से भिन्न भिन्न राज्यों के मंत्रीगण तथा कर्मचारी भवन देखने आते हैं और अपने-अपने राज्य में इसी प्रकार के भवनों की स्थापना करने की प्रेरणा और ज्ञान लेकर जाते हैं। सौराष्ट्र और बिहार की सरकारों ने ऐसे भवन स्थापित भी कर दिये हैं।

प्रारम्भ में भिन्न नगरों में ऐसे छः भवन खोलने का निश्चय केन्द्रीय बोर्ड ने किया है। दिल्ली में ऐसे एक भवन का प्रारम्भ हो चुका है। मद्रास में शीघ्र ही खुलनेवाला है। कलकत्ता में स्थान चुना जा कर प्राप्त कर लिया गया है। बंगलोर और भोपाल के भवनों की योजनाएँ विचाराधीन हैं। इनके सिवाय खयाल यह भी है कि हर एक राज्य के किसी बड़े शहर में एक-एक भवन

हो जाय। अब तक निम्नलिखित स्थानों में राज्यों की ओर से भवन खोले जा चुके हैं :-

(१) राजकोट में-सौराष्ट्र राज्य द्वारा,
(२) पटना में-बिहार राज्य द्वारा,
(३) जयपुर में-राजस्थान राज्य द्वारा।

अन्य राज्य भवनों की योजनाओं पर विचार विनिमय हो रहे हैं।

बम्बई के भवन के दो वर्ष पूरे हो गये। पहले वर्ष की बिक्री २० लाख रुपये की हुई। दूसरे वर्ष में सवाई बिक्री करने का अन्दाज रक्खा गया था। उसके अनुरूप २६ लाख रुपये की बिक्री हुई है।

दिल्ली के भवन को अभी पूरा स्थान प्राप्त नहीं हो सका है। अभी वह सिर्फ २,५०० वर्गफीट में चला रहा है। तो भी पहले वर्ष १५ लाख रुपये की बिक्री हुई है। दूसरे वर्ष के लिए २४ लाख की बिक्री का अन्दाज है। भवनों की बिक्री से खादी कार्य करनेवाली संस्थाओं को बड़ा सन्तोष मिला है। देश के दर्शनीय स्थानों में इन खादी भवनों की गणना होने लगी है। अरब देश के बादशाह बम्बई आये थे। माल पसन्द करने के लिए उनके पास समय कम था, इसलिए उन्होंने यह कह कर कि वे दस हजार रुपये का माल ले जायेंगे रकम अपने कर्मचारियों को दे कर विदा ली। उनके कर्मचारियों ने पसन्द कर माल ले लिया। हर एक राज्य अपने-अपने प्रदेश में कलाकारों को प्रेरणा देने तथा उनकी कारीगरी को जीवित रखने के लिए लाखों रुपये लगा कर संग्रहालय चलाता है। लेकिन खादी भवन दोहरे उपयोग के सिद्ध हुए हैं। संग्रहालय का काम भी देते हैं और बिक्री के केन्द्र भी बन गये हैं। साथ में विशेषता यह कि संग्रहालय चलाने का खर्च बच जाता है।

प्रादेशिक सरकारों के भवन भी अपने-अपने राज्य की कला-कारीगरी की वस्तुओं के संग्रहालय जैसे ही हैं। स्वतंत्र व्यापारी कला कारीगरी की वस्तुएँ उत्पादकों को कम कीमत देकर खरीद लेते हैं और बाद में उन पर खूब मुनाफा लेते हैं। उनके बजाय ये भवन विशेष प्रयास करते हैं कि कलाकारों को खूब प्रेरणा तथा प्रोत्साहन मिल सके। इसका फल यह होता है कि कलात्मक माल

की उत्पत्ति और गुण दोनों में वृद्धि होती रहती है।

जयपुर राज्य का म्यूजियम (संग्रहालय) देखने से हमें पुरानी कारीगरी और अब की क्षीण होती जा रही कारीगरी के बीच का अन्तर स्पष्ट दिखाई देगा। देश के कोने-कोने में आज भी उत्तमोत्तम कलाकार पड़े हैं, परन्तु उनकी कृति की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता जिससे वे कठिनाई से जिन्दगी बिताते देखे जाते हैं। खादी भवन ऐसे कलाकारों को शक्ति प्रदान करेंगे और देश की कला को नया जीवन प्रदान करेंगे।

इस तरह का एक उदाहरण मुझे याद है। कर्नाटक के कुमटा नामक स्थान के दो कारीगरों ने चन्दन तथा हाथी दाँत का एक सुन्दर गीता-रथ बनाया था। उसे बनाने में उन्हें लगभग दो वर्ष लगे थे। वे स्वतंत्र व्यापारियों के हाथों उस रथ को न बेच सके। बम्बई के खादी भवन का समाचार पाकर उन्हें आशा हुई कि उनका रथ वहाँ खरीद लिया जायगा। इस आशा से वे अपने रथ को लेकर बम्बई आ गये। उन्हें अपनी निर्धारित कीमत प्राप्त हो गयी। दूसरे ही दिन उस रथ को भवन के बाहरी भाग में जो काँच की बड़ी-बड़ी आलमारियाँ माल को सजा कर प्रदर्शित करने के लिए बनी हुई हैं, उनमें से एक में सजा दिया गया। उस रथ को देखने के लिए दर्शकों के झुंड के झुंड उमड़ पड़े। चौदहवें दिन वह रथ बिक गया और कारीगरों को वैसे ही दो और रथ तैयार करने का आर्डर दिया गया।

भवन की इन आलमारियों में लोगों को अनेक प्रकार की नवीनतम् वस्तुएँ देखने को मिलती हैं। दर्शक हर समय बड़ी संख्या में वहाँ से देखते हुए गुजरते रहते हैं और वह माल बिकता रहता है। पहले इन्हीं आलमारियों में विलायती माल पश्चिमी ढंग से सजाया जाता था। अब हमारा भारतीय माल भारतीय संस्कृति के अनुकूल पद्धति से सजाया जाता है। इस प्रसंग की एक बात है। इन आलमारियों के द्वारा हमें प्रदर्शित करना था कि भारतवर्ष में दीवाली का उत्सव कैसे मनाया जाता है। एक आलमारी में भारतीय महिलाओं द्वारा इस त्यौहार पर धारण किये जाने वाले अनेक प्रकार के वस्त्राभूषण सजाये गये थे तथा एक दूसरी आलमारी में गद्दी तकियावाली देशी बैठक प्रदर्शित करने का आयोजन किया गया जिसमें फल-फूलों से सुसज्जित कलश, गुलदस्ते वगैरह थे।

— ———

सत्ताइसवाँ प्रकरण

भवनों की रचना से खादी और ग्रामोद्योगों के माल को नये ग्राहक मिलने लगे हैं। अनेक नये खादी प्रेमी बने हैं जिनके द्वारा बिक्री पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। भवनों के उपरान्त प्रत्येक जिले में बड़े-बड़े खादी-ग्रामोद्योग भंडार, प्रत्येक शहर में भी वैसे ही भंडार और छोटे स्थानों में एजेन्सी भंडारों द्वारा खादी की बिक्री की व्यवस्था सारे देश में की जा रही है। जहाँ-जहाँ वस्त्र का उपयोग होता हो वहाँ खादी से ही उसकी पूर्ति हो यह ध्येय जब प्राप्त हो जायगा तब खादी का अधिक जमाव कहीं भी सम्भव नहीं होगा। खादी बोर्डों का कर्त्तव्य है कि वे इस स्थिति को टालें कि किसी काम मांगने आनेवाले को यह न कहना पड़े कि उसका बनाया हुआ माल बिकता नहीं, इसलिए उसे काम नहीं दिया जा सकता। इस काम के लिए योग्य युवकों को चुन कर उन्हें उत्तम विक्रेता व सुशोभनकार बनाने की तालीम देने की योजना अमल में आ चुकी है। इसमें शंका नहीं कि इन युवकों में स्वयं जिस हद तक खादी के प्रति आन्तरिक प्रेम होगा, उसी हद तक उनके हाथों खादी प्रचार प्रभावपूर्ण होगा।

स्वतंत्र रहते हुए भी कोई युवक मोहल्ले-मोहल्ले घूम कर या गाँव-गाँव घूम कर फेरी द्वारा मासिक पांच सौ रुपये का माल बेच सकता है जिस पर उसे ३५ या ४० रुपये कमीशन के मिलें और बोर्ड की ओर से १५ रुपये की मदद मिले। इस तरह वह कुल ५०-६० रुपये मासिक सरलता से कमा सकता है, खादी की खपत बढ़ा सकता है और उसे घर-घर में पहुँचाने में सहायक बन सकता है। खादी के साथ-साथ उपयोगी गाँधी साहित्य बेच कर भी अपनी कमाई में वह वृद्धि कर सकता है और साहित्य प्रचार में सहायक सिद्ध हो सकता है। ये बातें मेरी कल्पना के विहार की थोथी बातें हैं ऐसा कोई न समझले। यह ठोस सत्य है कि कई एक युवक इस तरह का काम करने लगे हैं और यह आशा की जा सकती है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक ऐसे अनेक विक्रेताओं के द्वारा बढ़ती हुई खादी की उत्पत्ति की खपत की जाने लगेगी जिससे खादी बिक्री का हमारा लक्ष्य प्राप्त हो सकेगा।

अट्ठाइसवाँ प्रकरण

खादी बोर्ड ने देश की प्राचीन कला कारीगरी और ऐतिहासिक कुशलता को जीवित कर देने में यथेष्ट भाग लिया है। भिन्न भिन्न स्थानों में बोर्डों द्वारा जो प्रदर्शन आयोजित होते रहते हैं उनमें देश के कोने-कोने से ऐसे कुशल कारीगरों की कार्यकुशलता के अद्वितीय नमूने प्रदर्शित होते रहते हैं। कला प्रेमी उन्हें देख कर आनन्दित होते हैं और उन्हें प्रोत्साहन देते हैं। इस तरह कई उद्योगों को नया जीवन मिलने का मुझे ज्ञान है जिसको मैं संक्षेप में यहां बताऊँगा। कई प्रकार की कारीगरी पुनर्जीवित हो गयी है और कई निराश कलाकार फिर से काम में लग गये हैं। इस तरह कई उद्योगों में नयी जान डालने में मैं स्वयं निमित्त बना हूं और इसे अपनी बड़ी कमाई मानता हूँ।

जब किसी उद्योग में अवांछित स्पर्धा घर कर जाती है तब व्यापारी लोग क्रमशः माल की कीमत घटाने में प्रवृत होते हैं और कारीगर माल की जाति उतारने में। इससे एक काल की प्रसिद्ध वस्तु बिगड़ कर बिलकुल हल्के प्रकार की सामान्य वस्तु जैसी बनने लगती है। तब उसकी मांग बंद हो जाती है और उद्योग नष्ट हो जाता है। स्वतंत्र व्यापारी माल की सस्ताई का आधार लेकर अधिक बिक्री की अपेक्षा करते हैं। ऐसा करने में ज्ञान नहीं रहता कि माल की जाति गिर रही है। इस नीति के कारण किसी काल में जो कला कारीगरी के प्रसिद्ध उद्योग रहे थे वे धीरे-धीरे टूटते रहते हैं। जिस कसब के दाम लोग खुश होकर मुंह मांगे देते थे आज वही कसब उन्हें देखे नहीं भाता। क्योंकि उसमें की गयी कला का काम बिलकुल नीचे दर्जे का रह गया है। इसके उपरान्त यंत्रोद्योगों के कारण यंत्रों द्वारा जो कलात्मक उत्पादन किया जाता है उसकी कला में हाथ-कारीगरी जैसा तेज और दीप्ति नहीं पाया जाता। इसलिए भी वे अप्रिय हो कर नाश के समीप पहुंच जाते हैं। ऐसे कसबी उद्योगों को जीवित रखने और मृतप्राय उद्योगों को नवजीवन देने के प्रयत्न बोर्डों द्वारा यथेष्ट मात्रा में हो रहे हैं।

पूर्वकाल से सूरत शहर की जरी का उद्योग संसार भर में ख्याति प्राप्त रहा है। विदेशी स्पर्धा के कारण अब वह मर रहा है। सच्ची जरी में चांदी के तार पर सोने का पानी हुआ करता था। उसके स्थान में अब तांबे के तार पर जरी जैसा दिखाई देने लगे इस प्रकार का पानी चढ़ाया जाता है। पहले समय का जरीवस्त्र ज्यों-ज्यों उपयोग में आता त्यों-त्यों उसकी चमक बढ़ती ही जाती थी और जब वह जीर्ण हो जाता था तब उसमें से चांदी वापिस मिल जाया करती थी। उसके स्थान में आजकल की उत्पन्न चमकदार बनावटी जरी प्रारम्भ में तो जरूर ध्यान खींचती है, लेकिन थोड़े से इस्तेमाल के बाद ही वह काली पड़ कर किसी मतलब की नहीं रहती। और जीर्ण होने पर एक पाई भी उसमें से वसूल नहीं हो सकती। रेशम का भी यही हाल हुआ है। रेशम की बजाय आजकल बनावटी (आर्टीफिशियल) रेशम ज्यादा खपता है। वह ज्यादा चमकदार दिखाई देता है। लेकिन कब तक? ऐसे बनावटी रेशम पर कलात्मक कढ़ाई वगैरह की जाय तो उसकी आयु भी कितनी हो?

ऐसे समाप्त प्रायः उद्योगों को उनके सच्चे रूप में नवजीवन देने के प्रयत्न बोर्ड ने शुरू किये हैं। कई तरह की कारीगरी तो अब देखने को भी नहीं रही है। किसी अनजान कोने में उसके कलाकार किसी तरह अधभूखे रह कर अपने दिन काटते होते हैं। ऐसे कारीगरों को बोर्ड कोने-कोने से ढूँढ़ कर एकत्रित कर रहा है और उन्हें अपनी कुशलता को प्रदर्शित करने का अवसर दे रहा है। साथ ही उनके ज्ञान का उपयोग नवयुवकों को सिखलाने की तजवीज में भी की जाती है। प्रदर्शिनियों में और अब तो भवनों में भी उनकी कलाएँ दर्शकों के सामने प्रदर्शित की जाने लगी हैं, जिससे लोग स्वयं भांति भांति की कारीगरी को पुनर्जीवित होता हुआ देख सकते हैं।

सूरत के जरी काम को जीवित करने के लिए तो बोर्ड ने एक स्वतंत्र विभाग खोला है। इस काम को जाननेवाले योग्य वृद्ध कलाकार मिल गये। नवयुवकों को उनके साथ काम में लगा दिया गया। उन्होंने स्वस्थता से अपना काम पूरी योग्यता से किया। उनका बनाया हुआ माल खुशी-खुशी बिक गया और उनके काम की पूरी कद्र हुई। यह सब सफलतापूर्वक हुआ है। इसकी तह में यह तथ्य है कि इस देश की प्रजा में हाथ कारीगरी के प्रति अपूर्व मान की भावना सदा से

रही है, इसलिए हाथ कारीगरी की वस्तुएं अधिक दाम देकर भी लोग खुशी से ले लेते हैं। दूसरे कलाकार और ग्राहक के बीच में कोई अन्य उपकारकार तो होता ही नहीं। इससे कलात्मक नमूनों का जो भी मूल्य आता है वह सीधा कलाकार को मिल जाता है। देश भर के भवनों और भंडारों में खोज-खीज कर ऐसी वस्तुएं बेची जाती हैं और कद्रदान ग्राहक उनके निश्चित दाम देकर खरीद ले जाते हैं।

बनारसी सेले और साड़ियाँ देश में प्रसिद्ध हैं। व्यापारियों ने मिलावट और कम मजदूरी के प्रयोगों से इस प्रसिद्ध उद्योग को भी कलंकित बना दिया था। लेकिन बोर्ड ने इस उद्योग को भी अपनी पूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त कराने के हेतु उससे शुद्ध रेशम, सच्ची जरी और कलाकार को पूरी मजदूरी की व्यवस्था कर दी है और उसके लिए बाजार भी जमा दिया है।

पाटण के पटोलों को तो हिन्दुस्तान की स्त्रियों के गीतों में स्थान प्राप्त था। विवाह के अवसर पर वह अवश्य उपयोग में आता था। इसके कारीगर किसी भी अन्य पुरुष को अपना काम नहीं सिखाते थे। पटोला बुना जाता हुआ कोई देख नहीं सकता था। ये काम वे अपनी सगी पुत्री को भी नहीं सिखाते थे। क्योंकि उसके द्वारा वह कसब पराये कुटुम्ब में पहुंच जाता। इस हद तक पटोलों के कारीगर संकुचित दिल के थे। पटोले की बनावट बड़ी ही अटपटी और सम्पूर्ण ध्यान से की जानेवाली होती है। पटोलो में अनेक नक्काशियाँ डाली जाती हैं। पटोले बुनने के लिए रेशम का ताना और बाना बड़े परिश्रम से तैयार किया जाता है। अत्यंत सूक्ष्म हिसाब करके रेशम के ताने और बाने के तारों को नपे हुए अंतर पर तारों से बांध कर निश्चित रंग में रंगा जाता है। इन अन्तरों की गिनती और भांति-भांति के रंगों की निश्चित दूरी बनाने की गिनती इतनी सूक्ष्म और कलापूर्ण होती है कि ताने के साथ बाने का तार गुंथते ही यथेष्ट चित्र पटोले पर उठता चला आता है। यदि पटोले में हाथी का चित्र डालना हो तो उन्हें हिसाब करके ताने और बाने के तारों को अमुक निश्चित दूरी पर अमुक-अमुक निश्चित रंग का रंगना होगा। यह गिनती पहले ही कर लेनी होती है। तभी हूबहू हाथी का चित्र उठने पाता है। इसमें समय और परिश्रम दोनों खूब लगते हैं। कला तो उसमें भरपूर है ही, इसलिए मूल्य भी अधिक होता है। इसका मूल्य मुख्यतया इसकी कला का मूल्य होता

है न कि इसमें लगे हुए माल का। सस्ते जमाने में ७५ रुपये से १०० रुपये तक बिकने वाला पटोला आज तीन सौ चार सौ रुपये तक पहुँच गया है। इतना मँहगा होने के कारण विवाह प्रसंग पर भी कुछ ही लोग खरीदते हैं। इससे इस माल की खपत घट रही है और कला का उपयोग कम हो रहा है। जाँच करने पर ज्ञात हुआ है कि इस कारीगरी को जाननेवाले मात्र दो कारीगर अब जीवित हैं। इनमें से एक बड़ी मुश्किल से अपनी कारीगिरी सिखाने के लिए तैयार किया जा सका है। इस कारीगर को सौ० र० समिति ने रख लिया है और कई नवयुवक उससे काम सीख रहे हैं। नये सीखे हुए एक दो व्यक्ति अलग काम भी करने लगे हैं।

काशमीर का बुनाई काम भी कला की दृष्टि से अद्वितीय है। जामेवार शाल बुनते समय बाने में अनेक प्रकार के रंग डिजाइन के क्रम से बड़ी दक्षता से डालने होते हैं। बाने की रंग-बिरंगी सैंकड़ों तरह की जुदा-जुदा कोकड़ियाँ उपयोग में लायी जाती हैं। एक शाल बुनते समय डिजाइन के काम ज्यादा अटपटी होने के अनुसार एक से अधिक कारीगर एक साथ काम करने बैठते हैं। एक दिन में शायद ही कभी ३ इंच से ज्यादा बुनाई की जा सकती है। वर्षों की बुनाई की अदभुत कारीगरीवाले दो जामेवार चरखा संघ को प्राप्त हुए थे। उनके कारीगरों को ढूंढ निकलाने की कोशिश की गई। लेकिन पता चला कि उनके बनानेवाले इस संसार से चल बसे थे। वह कला भी उनके साथ ही अस्त हो गई। एक प्रदर्शन में ये नमूने सजाये गये थे उन पर लिखा था कि इनके बनानेवाले कलाकार कालवश हो चुके हैं। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने यह पढ़ कर प्रश्न किया कि क्या अब कोई ऐसी कारीगरी नहीं कर सकता? मैंने इनकार किया। उन्होंने वे नमूने अपने भवन में सुरक्षित रखने को मांगे। उससे भी मैंने इनकार किया। मैंने निवेदन किया कि ये नमूने खादी बोर्ड के संग्रहालय में रखने उचित होंगे। अब वे बम्बई के खादी भवन के संग्रहालय विभाग में देखे जा सकते हैं।

ग्वालियर के नजदीक चंदेरी नामक स्थान साड़ियों की अद्भुत बुनाई के लिए पूर्वकाल से प्रख्यात रहा है। अंग्रेजों के भारत में आने से पहले के काल में भी वहाँ की ख्याति थी। वहां के "कतवैया' जाति के कारीगर ८० से १०० अंक का सूत कातते थे। इतना महीन सूत कात सकने के लिए कत्तिन की

अंगुलियों की सुकुमारता अनिवार्य होती थी। इसलिए इन बाहिनों के घरवाले उनसे न वर्तन मंजवाते थे और न पानी खिंचवाते थे। स्वयं ही ये काम कर लेते थे। यंत्रों के आक्रमण से इनकी कताई की कला क्षीण हो गयी, कातने का काम मिलना बंद हो गया, क्योंकि मिल का सूत उपलब्ध होने लगा। लेकिन बुनाई की कला अब भी मिल के सूत द्वारा जीवित अवस्था में है।

बोर्ड की स्थापना के बाद मध्य भारतीय प्रादेशिक बोर्ड से चंदेरी की कला के समाचार मुझे ज्ञात हुए और मैं वहाँ देखने के लिए गया। मिल के सूत के बदले हाथ के सूत की व्यवस्था की गई। सिंधिया महाराजा के समय से इस कला को पीढ़ी दर पीढ़ी जीवित रखने के लिए एक टेक्निकल स्कूल चलाया जाता रहा है। इस स्कूल में बुनाई की नई-नई डिजाइनें तैयार होती हैं। पहले तो बुनकरों के लड़के ही अनिवार्य तौर पर इस स्कूल में तालीम लेते थे। अब किसी भी कौम के युवकों को यहाँ प्रवेश मिल सकता है। इस स्कूल के द्वारा बुनाई की कला प्रचलित रह पायी है। मैंने जाँच करने पर मालूम किया कि अंग्रेजों के आने के बाद इस कौम ने कताई का काम छोड़ दिया। अब इस कौम के पुरुष जंगली वस्तुओं को एकत्रित करके बेचने का काम करते हैं। इनमें से एक आदमी मुझे मिला। उसने बताया कि अंग्रेजों के समय में हमारे अंगूठे काटे गये। इससे हम लोग डर गये और अपने पूर्वजों का धंधा छोड़ दिया। अब तो जंगल ही हमारी रोजी का सहारा है। यह सुनते ही मुझे रोमांच हो आया। चंदेरी की कला के अनेक नमूने मैंने एकत्र किये। वहाँ के अधिकारियों के साथ मशविरा किया कि कतवैया कौम के लोगों को जो जंगलवासी बने हुए हैं वापिस गाँवों में बसा कर उनके पूर्वजों का काम उनसे कराया जाय और उनके प्रख्यात बुनकरों द्वारा हाथ कते बारीक सूत, रेशम और जरी के नमूने बुनवाने की व्यवस्था की जावे तो यहाँ की कला को नया जीवन मिल सकेगा। उनके माल की खपत का आश्वासन हमने दिया है। इसलिए उनके द्वारा अनेक डिजाइनों का माल बुनाया जाकर उसका प्रचार होने लगा है। कतवैया कौम के लोगों को बारीक कताई का काम फिर सिखा देने की व्यवस्था की गई है।

उन्तीसवाँ प्रकरण

खादी में अब भाँति-भाँति का कपड़ा तैयार होने लगा है। ग्राहक अपनी कैसी भी रुचि की पूर्ति करने के लिए खादी भंडारों में पूछताछ करने लगे हैं। उनके संतोष के लिए मिल के कपड़ों की तरह भाँति-भाँति की खादी तैयार करायी जाने लगी हैं। देशी-विलायती अनेक नयी डिजाइनें खादी में तैयार होने लगी हैं। इससे ग्राहकों को मन पसन्द खादी मिलने लगी है और अपना व्यापार बढ़ रहा है।

प्रारम्भ में खादी के तौलिए नहीं बनते थे। मोटी खादी के तौलिए के आकार के कपड़े के टुकड़े तौलियों का काम देते थे। बापू जब छः वर्ष के लिए जेल में जा बैठे थे तब गंगा बेन आश्रम में चौतारी खादी तैयार कराती थीं। उनका तैयार किया हुआ माल शीघ्र खपाते रहने के लिए बापू ने जेल में से मुझे सूचना की थी। गंगाबेन ने चौतारी खादी के तौलिये पहले-पहल बनाये। फिर कुछ समय बाद १२ डोबी के "इनीकुम्ब तौलिए" बने और अब तो तौलियों के अगणित प्रकार लोकप्रिय हो गये हैं।

रूमाल के बारे में भी ऐसी ही कुछ बात है। खादी के टुकड़ों के रूमाल पहले तैयार होते थे, फिर धारी डाल कर सादे रूमाल बुने जाने लगे। अब तो रूमालों में भी कई डिजाइनें चालू हैं। खादी की एक प्रदर्शिनी में मैंने रूमालों के जुदे-जुदे ५४ प्रकार गिने थे।

कपड़े के व्यापार का जो अनुभव मुझे था उसका उपयोग मैंने खादी की भिन्न-भिन्न जातें तैयार कराने में किया। अब बम्बई के खादी भवन में विविध प्रकार की खादी जनता को आकर्षित करती रहती है। खादी में विश्वास न रखनेवाले भी अपनी जरूरत की चीजें भवन में से खरीद ले जाते हैं। इसका एक उदाहरण मैं यहाँ दे रहा हूँ।

अनेक प्रकार के कपड़ों की पसन्दगी करनेवाले ग्राहकों को खादीधारी बनाना बड़ा कठिन काम है। परन्तु यह भी सत्य है कि यदि उनके सन्तोष की चीज प्राप्त करा दी जा सके तो वे सदा के लिए खादीधारी बन जाते हैं। इसलिए बम्बई भण्डार में ऐसे नये ग्राहकों की अनुकूलता पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है। मुझे याद है कि एक बार मिल के कपड़े के एक प्रसिद्ध व्यापारी कांग्रेस के टिकट पर चुने जाकर बम्बई कारपोरेशन के सभ्य बने। उनको नियमानुसार खादी पहननी चाहिए। इसलिए वे भण्डार में खादी खरीदने गये और सीधे मेरे पास आकर बोले "अब मुझे अनिवार्य तौर पर खादी पहननी है, इसलिए तुम्हारे पास जो हो वह मुझे दिलवा दो"। मैं जानता था कि वे ऊंची जाति का कपड़ा पहनते थे, लेकिन उनके खयाल में खादी का मतलब तो मोटा और खुरदरा कपड़ा ही था। मैंने उनका यह भ्रम दूर करने के लिए आन्ध्र और बिहार की मुलायम और बारीक खादी की अनेक जातियां दिखायीं। देखते ही उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया कि खादी भी ऐसी बढ़िया होती है। उन्होंने धोती, कोट, कुर्ता वगैरह के उपयुक्त कपड़ा पसन्द कर लिया। वे अपनी जाति के अनुसार एक विशेष प्रकार की पगड़ी बांधते थे। इसलिए उन्होंने पूछा कि अब पगड़ी के लिए क्या करेंगे। मैंने पगड़ी के लिए भी खादी निकलवा दी। उसमें उन्होंने अपनी पगड़ी बंधवा ली। ऐसी छोटी-छोटी बातों का भी बम्बई भंडार ने पहले से ही ख्याल रखा है। उस दिन उन महाशय ने पन्द्रह सौ रुपये की खादी खरीद की थी।

तीसवाँ प्रकरण

सन् १९२२ में स्वास्थ्य लाभ के लिए मैं काश्मीर गया था। बम्बई से समाचार मिला कि खादी-केन्द्रों में खूब खादी इकट्ठी हो गयी है और कत्तिनों-बुनकरों को मजूरी चुकाने के लिए रकम नहीं बची है। मैं तुरन्त ही बम्बई आ पहुंचा और खादी खपा देने के लिए विचार करते-करते मुझे कलकत्ते का एक प्रसंग याद आया।

एक बार कांग्रेस अधिवेशन कलकत्ते में हुआ था। जिसके अध्यक्ष पंडित मोतीलाल नेहरू थे। तभी बापू ने वहाँ एक खादी भंडार का उद्घाटन किया था। जब लोगों को मालूम हुआ कि उद्घाटन के समय जो खादी बिक्री के बिल बनेंगे उन पर गांधी जी के हस्ताक्षर होंगे तो लोग उमड़ पड़े। बिल बनने में यों तो बहुत समय लगता, इसलिए बापू ने लोगों से कहा कि जितने रुपयों की खादी लेनी हो उतने रुपये मेरे हाथ में दे दो तो मैं उतने रुपये का मेरे हस्ताक्षरों वाला बिल (रसीद) बनवा दूं। माल पीछे पसन्द करके लेते रहना। १०-१५ मिनट में ढाई हजार रुपयों के बिल बन गये। पास खड़े हुए श्री कृपलानी जी ने विनोद किया, "लेना-देना कुछ नहीं और बनिये ने ढाई हजार रुपया मार लिया।" बापू ने विनोद में ही इसका उत्तर दिया, "ऐसे काम बनिये ही कर सकते हैं। प्रोफेसरों से नहीं हो सकते।" मैंने यह प्रसंग देखा था, इसलिए उनकी याद आते ही मैंने सोचा कि बिल के स्थान में वैसा ही कोई टिकट या कूपन निकाला जाय तो खादी का स्टाक कुछ कम हो सकेगा। इस पर खादी हुंडी निकालने का विचार सूझा। पहले हफ्ते में ३० हजार रुपये की हुंडियाँ बिकीं। उनका रुपया तुरन्त ही पंजाब के उत्पत्ति केन्द्र को भेज दिया गया। रकम मिलते ही पंजाब शाखा के मंत्री ने जो लिखा वह मुझे याद है, "वर्षा की आतुरता से राह देखनेवाले चातक के मुंह में वर्षा की दो-चार बूंदे गिरने से

जो शांति उसे मिलती होगी वैसी ही शांति बम्बई से प्राप्त इस रकम से कत्तिनों को मिली है।"

खादी हुंडी की बिक्री से रकम पहले से मिल जाती है और खरीदार अपनी सुविधानुसार बाद में माल ले सकते हैं, इसलिए हुंडियों की रकम उत्पत्ति केन्द्रों को समय पर बड़ी सहायक सिद्ध होती हैं। हुण्डियों की प्रथा वर्षों से चली आ रही है। सन् १९५४ में बोर्ड की ओर से सारे भारत में एक ही आकार-प्रकार की हुंडियां प्रकाशित की गयी थीं। उस वर्ष की हुण्डी बिक्री करीब ५१ लाख रुपयों की हुई थी। आजकल देश भर के ६५ हजार डाकघरों में खादी हुंडियों की बिक्री की व्यवस्था है।

हुँडियों के विषय में अब योजनापूर्वक काम होने लगा है। उनके प्रचार के लिए भी अत्यन्त बारीकी से सोच कर उपाय निर्धारित कर लिये गये हैं। कल्पना के क्षेत्र से निकल कर विचारोंने परिपक्व अनुभव का रूप पा लिया है। हर एक गांधी जयन्ती पर हुंडियों का प्रचार बड़े जोश से शुरू होता है। उसकी सफलता के लिए नीचे लिखे उपाय निश्चित हुए हैं:

पहले से छपा वितरण किये गये हुन्डी सम्बन्धी पोस्टर उपयुक्त समय पर हर एक रेलवे स्टेशन, डाकघर, पुलिस थाना, बैंक तथा अन्य इस प्रकार के तमाम सार्वजनिक स्थानों पर जहाँ लोगों की दृष्टि पड़ती हो लगवा देना; सरकारी दफ्तरों, संस्थाओं वगैरह में इस सम्बन्ध के डिमास्ट्रेशन आयोजित कराना; हर एक सरकारी विभाग द्वारा उसके प्रत्येक कर्मचारी तक खादी हुन्डी का सन्देश पहुँचाना; सरकारी समाचार विभाग, प्रकाशन विभाग तथा रेडियो की पूरी-पूरी सहायता प्राप्त करना; देश भर के सिनेमागृहों में इस विषय की न्यूज रील और स्लाइट दिखाये जाने का प्रबन्ध इत्यादि करना।

स्लाइडों के लिए नीचे दिये गये नमूने प्रभावकारी सिद्ध हो सकेंगे :-

राष्ट्रपति, पंडित जवाहरलालजी, अन्य नेताओं तथा जनता ने खादी टोपी और कुर्ता पहना हुआ हो तो उसका चित्र, जिसमें यह लिखा हुआ हो "भारत की राष्ट्रीय पोशाक खादी टोपी और कुर्ता।"

गाँधी जयन्ती के निमित्त प्रत्येक व्यक्ति एक रुपये की भी खादी खरीदे

तो करोड़ों रुपयों की खादी बिक जाय और अगणित कामगारों को उसके द्वारा रोजी मिले, इसका चित्र।

"भारत के अहिंसक समाज की प्रतीक खादी" इन शब्दों के नीचे खादी का थान, टोपी, कुर्ता, तौलिया आदि के चित्र।

"एक रुपये की खादी अर्थात ग्रामीण निर्धन को दो समय का भोजन" इस वाक्य के नीचे उपयुक्त चित्र।

व्यापारी मंडलों, मजदूरों, विद्यार्थियों, महिला समाजों, भारत सेवक समाज की शाखाओं से सम्पर्क स्थापित करके प्रचार की व्यवस्था करना। समाचार पत्रों में पहले से ही खादी हुण्डियों के ब्लाक प्रकाशित करने, खादी हुंडी पूरक आवृत्तियाँ निकलवानी, राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, कांग्रेस अध्यक्ष तमाम राज्यों के मुख्य मंत्रीयों के सन्देश और खादी हुंडी निकालने के उद्देश्य बतानेवाली पुस्तिका प्रकाशित करनी।

२ अक्तूबर को सवेरे हरएक मुख्य मंत्री के हाथों से खादी हुण्डियों की बिक्री शुरू करानी, इस सप्ताह के दौरान में प्रत्येक व्यक्ति के कानों में खादी हुण्डी की बात पहुँचा देनी।

यह सब किया जाय तो खादी हुंडी में ऐसी शक्ति है कि वह नये-नये ग्राहक बनाकर खादी प्रचार को मजबूत बना सकती है और साथ ही खादी उत्पादन के लिए कुछ काल के लिए पूँजी दिला सकती है।

इकतीसवाँ प्रकरण

खादी कार्य के विकास और प्रचार में महिलाओं ने खासा बड़ा भाग लिया है। नई डिजाइन या कारीगरी वाला माल भंडार में आते ही कई खादी प्रचारक महिलाओं के प्रयत्नों द्वारा उसकी बड़ी मात्रा में बिक्री करा सकने के अनेक उदाहरण मुझे याद हैं। पहले-पहले तिरुपुर में साड़ियाँ तैयार हुईं। अच्छी थीं, लेकिन मुलायम कुछ कम थीं, जल्दी-जल्दी बिक नहीं रही थीं। राष्ट्रीय सप्ताह मनाने के लिए बम्बई के मारवाड़ी विद्यालय में महिलाओं की एक सभा श्रीमती सरोजिनी नायडू की अध्यक्षता में होने वाली थी। सभा से पहले ही तिरुपुर की एक साड़ी लेकर मैं श्रीमती सरोजिनी नायडू से मिला। उन्हें वह साड़ी भेंट करते हुए मैंने निवेदन किया, "भंडार में ऐसी साड़ियों का जमाव हो गया है, उन्हें खपाने में मदद कीजिये और इस उद्देश्य से आज आप इस साड़ी को पहन कर सभा की अध्यक्षता कीजिए।" सभा स्थान के दरवाजे के पास मैंने यह माल बिक्री के लिए लाकर रख लिया था। अपने भाषण में देवीजी ने खादी की भिन्न-भिन्न जातों का वर्णन किया और कहा कि ऐसी सुन्दर साड़ियाँ अब मिलने लगी हैं, जैसी मैंने पहन रखी है और उस साड़ी का खूब बखान किया। उसी दिन दरवाजे पर ही बहुत-सी साड़ियाँ बिक गयीं और फिर तिरुपुर की साड़ियाँ प्रचलित हो गयीं।

गांधी सेवा सेना, भगिनी समाज और भाटिया स्त्री मंडल जैसी महिला संस्थाओं ने खादी-कार्य में प्रशस्त भाग लिया है। इनकी सदस्य महिलाएँ घर-घर में जाकर खादी और खादी-हुन्डियों का प्रचार करती थीं। अनेक प्रदर्शिनियों में इन उच्च कुटुम्बों वाली सदस्याओं ने खादी विक्रेता के स्थान पर रह कर सेवा की है। अपनी कल्पना से साड़ियों और किनारियों की नयी-नयी जातियों के नक्शे और डिजाइन तैयार करके भंडार को समय-समय पर अर्पित की हैं जिनसे भंडारों ने लाभ उठाया है। आन्ध्र की अनेक प्रकार की साड़ियाँ उन्हीं के प्रताप

से आज फैशन में स्थायी बन गयी हैं। ऊँची से ऊँची कीमत की जरीदार या जार्जेट साड़ी की तुलना में भी उन्होंने आन्ध्र की प्रचलित ढब की साड़ी पहन कर उसके शौक को दिनोदिन बढ़ाया है। आन्ध्र देश के केन्द्र संचालक स्वयं बम्बई आकर बहनों की पसन्दगी का बारीकी से अध्ययन कर जाते थे। उनके समक्ष बुनाई की क्रिया का प्रदर्शन कर दिखाते थे और वे बहनें मन पसन्द डिजाइनों का ज्ञान कराती थीं। भाँति-भाँति के साड़ी पल्लों और रंगों की विविध प्रकार की मिलावट और जमावट का ज्ञान बहनों के द्वारा उन्हें प्राप्त होता था। जब उनकी कल्पना के अनुरूप माल तैयार हो कर भण्डार में पहुँचता था तो बड़ा हर्ष और सन्तोष व्यक्त करती थीं और उल्लासपूर्वक उसे खरीद ले जाती थीं।

आन्ध्र की साड़ी का चलन बम्बई में इतना प्रिय और प्रचलित हो गया कि कई बहनें अपनी अलग ही डिजाइन और रंग जमावट का नमूना देकर वैसी तीन साड़ियों का आर्डर दे जातीं और साथ में यह शर्त स्वीकार कर जाती थीं कि इस नई डिजाइन के लिए केन्द्र को जो विशेष व्यय करना होगा उसे भी वे सहन कर लेंगी, लेकिन केवल तीन साड़ियाँ बुन कर उसे बंद करवाने की मांग वे करती थीं। इसका कारण वे यह बतलाती थीं कि यह डिजाइन उनके कुटुम्ब के उपयोग के लिए ही मर्यादित रखना है। अपने बालकों के कपड़ों के लिए वे अनुकूल जाति पसन्द करतीं थीं और तैयार कपड़ों की विविधता का ज्ञान भी वे करातीं थीं। इसी तरह रंगों और छपाई काम के उत्कर्ष में भी महिलाओं का बहुत बड़ा हाथ रहा है। उन्होंने अनेकों रंग और भाँति-भाँति की छपाई की कल्पना हमें करायी है। सोफा सेटों तथा खिड़कियों और दरवाजों के परदों के लिए उपयुक्त कपड़े के अनेक छाप और रंगों के नमूने हमें उनसे प्राप्त हुए हैं और वैसा माल तैयार होने पर उसका स्वयं उपयोग करके और अनेक अतिथियों और मित्रों के समक्ष उसकी प्रशंसा करके उस माल की खपत उन्होंने बढ़ाई है।

बत्तीसवाँ प्रकरण

अपने हाथ से काते हुए सूत को बुनवा कर जो खादी उपयोग में लाई जाती है उसे स्वावलम्बी खादी कहा जाता है। देश भर में ऐसी खादी द्वारा बहुत से खादी प्रेमी वस्त्र स्वावलम्बी बन गये हैं। शहरों तक में ऐसे खादी प्रेमी अब देखने में आने लगे हैं। बम्बई जैसे शहर में भी अब अनेक वस्त्र स्वावलम्बी परिवार हैं। वे स्वयं सूतकात कर उसे भण्डार में बुनवाने के लिए दे जाते हैं। भण्डार उनके सूत की खादी बुनवा देता है। लेकिन बुनवाने में बहुत समय लग जाता है। बीच में आने पर उन्हें जवाब मिलता है कि उनकी खादी अभी तक बुनकर नहीं आई है तो वे बड़ी निराशा से वापिस लौट जाते हैं। अब ऐसे स्वावलम्बियों के लिए भण्डार ने अपने क्षेत्र में ही बुनकरों की व्यवस्था कर ली है। कोरा केन्द्र में ८ बुनकर परिवार स्वावलम्बी खादी बुनने के लिए बसाये गये हैं। बम्बई का निर्वाह खर्च अधिक होने के कारण उन्हें अधिक बुनाई दी जाती है। अपने हाथ के कते सूत की खादी पहनने में हर एक व्यक्ति को बड़ी आत्मीयता लगती है।

प्रसंग की बात है। एक महिला अपना कता सूत बुनवाने के लिए डाल गई थी। बुनकर आ जाने पर वह खादी-भण्डार को ही धुलवा देने के लिए दे गयी। खादी धुल कर आई लेकिन कहीं रख कर भुला दी गयी। वह बहिन जब अपनी खादी लेने आई और उन्हें वह न मिल सकी तो उनके मुख पर की गहरी निराशा के भावों को शब्दों में व्यक्त करना मेरी शक्ति से परे है। हम उन्हें उनके सूत से कहीं अधिक बारीक पोत की खादी देने लगे लेकिन उन्हें वह पसन्द न पड़ी। एकाध सप्ताह के पश्चात एक भाई ने भंडार पर आकर कहा कि उनके बंडल के बजाय यह दूसरा कोई बंडल उन्हें भूल से दे दिया गया है। तब उन बहिन को सूचना दी गई और अपने हाथ की खादी पाकर उन्होंने बड़ा सन्तोष पाया। उस समय इस घटना की खबर मैंने बापू को लिख भेजी थी और वह नवजीवन में प्रकाशित भी हुई थी।

फुर्सत के समय में सूत कात कर उसे बुनवा कर पहननेवाले खादीधारी खादी के मूल उद्देश्य को पूर्ण करते हैं और बापू की खादी-कल्पना को मूर्ति स्वरूप देते हैं। ऐसे वस्त्र स्वावलम्बी दिन-प्रतिदिन बढ़ते ही जाते हैं। उनके प्रोत्साहन के लिए बोर्ड बुनाई मदद देता है। वास्तविक बुनाई को दो तिहाई रकम या ५ आना प्रति वर्ग गज इन दोनों पद्धतियों से गिनने पर जिस पद्धति से कम रकम निकले वह दी जाती है। फलतः नाम मात्र की बुनाई देकर सीधी रुई या पूनी के दामों में मन पसन्द खादी बन जाती है। ऐसे व्यक्तियों को खादी कभी मंहगी नहीं लग सकती। ऐसे व्यक्तियों में से खादी की भावना कभी नष्ट नहीं हो सकती। इसीलिए कहते हैं कि स्वावलम्बी खादी चिरजीवी खादी है।

तेतीसवाँ प्रकरण

खादी बोर्ड की स्थापना के पूर्व चरखा संघ, सर्व सेवा संघ तथा अन्य प्रमाणित संस्थाएँ खादी उत्पत्ति और विक्री का काम कर रही थीं। लेकिन बोर्ड की स्थापना होने पर सरकारी सहायता द्वारा पूँजी के अभाव के कारण रुकी हुई खादी की उत्पत्ति और विक्री के काम को वेग दिया गया है।

तीन आना प्रति रुपये की रियायत जो सरकार की ओर से खादी खरीदनेवालों को मिलना शुरू हुआ था उसका पूरा-पूरा लाभ दिया जाने लगा। इससे उत्पत्ति और विक्री अब चरम सीमा को प्राप्त कर चुकी है और आगे उसके विकास की गुंजाइश नहीं रही है लेकिन तिस पर भी विक्री कार्य विस्तृत हुआ। चर्खों की मांग बढ़ी और कत्तैयों की संख्या बढ़ी। विक्री पांच करोड़ तक जा पहुंची और फिर भी प्रगति हो ही रही थी। ऐसी आशा उत्पन्न हुई कि नौ करोड़ की विक्री का लक्ष्य प्राप्त हो जावेगा। इतने में अम्बर चरखे का संशोधन प्रकाश में आने लगा। उसके आशास्पद समाचार मिलते रहते थे। द्वितीय पंचवर्षीय योजना गढ़ी जा रही थी। उसमें खादी का स्थान निश्चित किया जा रहा था। अधिकृत व्यक्तियों ने गणना करके घोषणा की कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक १२० करोड़ रुपयों की खादी उत्पत्ति की जावेगी। इस घोषणा में खादी-कार्यकर्त्ताओं के मन में एक साथ ही आशा आनन्द आश्चर्य और चिन्ता के भाव पैदा हो गये।

अब हम कल्पना के मनोराज्य से ऊपर उठ चुके हैं। अब हमने योजनावद्ध कार्यक्रम तैयार किया है। यह आजाद भारत का आयोजन है। बापू की यह भावना थी कि खादी-कार्य लाख में से करोड़ और करोड़ से अरब को पहुंचनेवाला है। उनकी इस भावना को अम्बर चरखा मूर्त रूप देगा। घर-घर में जरूरत का कपड़ा तैयार होगा। इस काम में ईश्वर की कृपा से मेरी सम्पूर्ण शक्ति खर्च हो रही है, यह मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है।

सरकार ने अम्बर चरखे को, भले ही आंशिक तौर पर कहें, अपनाया

है। जाँच करवा कर यह बात मान ली गई है कि अम्बर चरखे का सूत मजबूती वगैरह में मिल के सूत की बराबरी का उतरता है। इसलिए अरब के अंकों को प्राप्त करने के संयोग उपस्थित हो गये हैं। पाँच वर्ष के अन्त में लक्ष्यांक प्राप्त करने की गणना करते समय हम जरा ठंडे दिल से और खूब ध्यान से काम लें, ऐसा सरकारी निर्देश मिला। बापू की महानता देश भर में व्याप्त थी। कार्यकर्त्ताओं ने हिम्मत न हारी और अहमदाबाद में एकत्रित हुए। यह निश्चय कर वहाँ से हटे कि सरकार की जितनी मदद मिल सके वह ली जावे तथा शेष मदद जनता जनार्दन से प्राप्त कर काम को लक्ष्य तक पहुँचाया जावे और एक एक खादी कार्यकर्त्ता अम्बर के कामों में लग जावे।

अम्बर के इतने बड़े और व्यापक काम को सफलतापूर्वक सम्भाल सकने के लिए बोर्ड ने एक स्वतंत्र अम्बर विभाग की रचना की और उसका संचालन मुख्यतः बोर्ड के युवक मंत्री श्री प्राणलाल कापड़िया को सौंपा गया। श्री प्राणलाल कापड़िया एक धुन के पूरे व्यक्ति की भांति रात दिन अम्बर के पीछे लग गये हुये हैं। देश भर में अम्बर का काम जमा दिया गया है। ऐसी आशा उत्पन्न हो गई है कि भूलें करते करते भी हम आगे बढ़ते रहेंगे और जब बोर्ड और देश की समग्र शक्ति इस के पीछे लग रही है तो अम्बर चरखा जरूर ही सफलता प्रदान करेगा।

सारे देश में स्थान–स्थान पर अम्बर की तालीम दी जाने लगी है। कार्यकर्त्ता तैयार हो रहे हैं और अब तो परिश्रमालयों में कताई भी होने लगी है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम वर्ष का लक्ष्यांक प्राप्त हो जावेगा और तब सरकार की "रुक जावो" की चेतावनी "आगे बढ़ो" के उद्‌बोधन में परिवर्तित करायी जा सकेगी।

इस प्रकार अम्बर के द्वारा खादी–उत्पत्ति का लक्ष्यांक प्राप्त किया जा सकेगा। उसके साथ ही साथ अम्बर के ही कारण खादी के भावों में भी यथेष्ट कमी की जा सकेगी। उसका परिणाम यह होगा कि जो जनता महंगी होने के कारण अभी खादी नहीं खरीदने पाती वह खुशी से खरीद सकेगी। आज जिस तरह मिल का कपड़ा गली और मोहल्ले में सुलभ हो रहा है उसी तरह जब तक खादी भी सुलभ न हो जावे तब हमें अपने सुप्रयत्न जारी रखने होंगे।

चौंतीसवाँ प्रकरण

किसी धंधे का विज्ञापन उसका प्रचार करने में महत्त्वपूर्ण भाग अदा करता है। बड़ी-बड़ी रकमें खर्च करके भी व्यवस्थित विज्ञापन कराये जाते हैं, परन्तु खादी के विज्ञापनों के लिए इतना खर्च कहाँ से आवे? प्रारम्भ में तो देशभक्ति से प्रेरित हो कर अनेक समाचार पत्र अनेक प्रसंगों पर खादी का प्रचार करने की बहुत कुछ सुविधा मुफ्त कर देते थे। कभी-कभी खादी सम्बन्धी पूरक आवृत्तियाँ तक निकाल कर अपना कर्तव्य पालन करते थे।

प्रदर्शिनियों ने खादी प्रचार में प्रमुख भाग लिया है। बम्बई की प्रिंसेस स्ट्रीट पर अशोक बिल्डिंग नाम की एक पाँच मंजिले इमारत में प्रथम खादी प्रदर्शिनी की गयी थी। उसमें खादी उत्पादन की सारी क्रियाएँ प्रदर्शित की गयी थीं। आसाम के अंडी नामक कीड़ों द्वारा अहिंसक क्रिया से अंडी रेशम बनाने की विधि प्रदर्शित करने के लिए आसाम से उस काम के खास कारीगर बुला कर इस कीड़े का और उस रेशम का पूरा काम दिखाया गया था। कताई और धुनाई की स्पर्धाएँ आयोजित की गयी थीं। उस समय रुई धुन कर पूनी बनाने का काम नया-नया ही चला था। इसलिए हाथ से धुन कर बढ़िया पूनी बनाने वालों की स्पर्धा में प्रथम व्यक्ति को १०१ रुपयों का पारितोषिक दिया गया था। श्री मगनलाल भाई गांधी उस स्पर्धा के निरीक्षक और निर्णायक थे। पूनी का इनाम श्री गंगा बेन वैद्य ने जीता था।

महिलाओं ने प्रदर्शिनी को बहुत पसन्द किया था। पर्देवाली महिलाओं के लाभ के लिए एक विशेष "महिला दिन" रख कर उस दिन प्रदर्शिनी केवल स्त्रियों के लिए खुला रखा गया था। उस दिन सारी प्रदर्शिनी में और दूकानों पर भी पुरुषों के स्थान में स्त्रियाँ नियुक्त हो गयी थीं। उस दिन महिलाओं की अपार भीड़ थी जिससे सड़क का यातायात तक रुक गया था। आज कल सारे देश में लाखों रुपये खर्च करके बड़ी-बड़ी प्रदर्शिनियाँ भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न अवसरों पर होती ही रहती हैं और वे आज के जमाने में प्रचार-कार्य के बड़े महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली अंग हैं।

देहात में भाषण, पत्रिकाएं अथवा प्रदर्शन वैसा प्रभाव नहीं डाल सकते जैसा कोई कथाकार या भजनीक अपनी कथा या कीर्तन द्वारा डाल सकता है। क्योंकि कथाकार या भजनीक उनकी अपनी भाषा में उपदेश का एक-एक घूंट उनके गले में उतार सकता है। संत तुकड़ों जी महाराज और श्री दुःखायल जैसों के भजनों से ग्रामीण जनता बहुत ज्ञान उपार्जन कर लेती है। खादी और ग्रामोद्योगी वस्तुओं के प्रचारार्थ उपयुक्त भजन, कीर्तन, नाटक, संवाद आदि योग्य कलाकारों द्वारा तैयार करा के देहातों में उन्हें आयोजित कराया जा सके तो कम खर्च में कारगर प्रचार साध्य हो। इस ओर हर एक प्रदेश को ध्यान देना चाहिए।

खादी प्रदर्शिनियों ने खादी के प्रचार में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया है। उनके कारण नये-नये खादी प्रेमी बनते रहे हैं। उनके हजारों दर्शकों के मन पर कोई न कोई स्मृति रह ही जाती है। वर्षों के अनुभव के आधार पर प्रदर्शिनियों के विषय का इतना ज्ञान मेरे स्मृति पट पर आलेखित हो चुका है कि उसका एक स्वतंत्र शास्त्र ही रच डालूँ। इसमें से कुछ यहाँ लिखने का प्रयत्न करता हूँ।

प्रचार कार्य शुरू करने के लिए सितम्बर के अन्तिम और अक्तूबर के प्रथम सप्ताह के बीच के दिन अनुकूल माने जाने चाहिए। हुंडी की बिक्री हो रही हो, गाँधी जयन्ती का पवित्र सन्देश सब के कानों में गूँज रहा हो और आगामी दीपावली तथा शीतकाल की ऋतु के लिए जरूरी वस्त्र खरीदने का विचार सबके मन में आ रहा हो ऐसे सुन्दर दिनों में यदि एक प्रदर्शिनी का योग भी मिल सके तो बिक्री पर उसका गहरा प्रभाव देखा जा सकेगा। सूती, ऊनी, रेशमी सब तरह की खादी की बिक्री का यह अनुपम काल है, इसलिए प्रदर्शिनी ऐसे समय में एक अवसर प्रदान करती है कि हर एक व्यक्ति अपनी जरूरतें खादी द्वारा ही क्यों न पूरी कर ले।

ऐसी प्रदर्शिनियाँ अवश्य ही सुव्यवस्थित और आकर्षक होनी चाहिएँ। वे बिक्री की राह, प्रगति के प्रकाश स्तम्भ और कला तथा संस्कृति के केन्द्र के रूप होनी चाहिएँ। वे रूखे भी नहीं बल्कि ग्राम विकास के अनुरूप मनोरंजनों से रसपूर्ण भी होनी चाहिएँ।

तीन दिन से लेकर एक या दो सप्ताह की मुद्दत ऐसी प्रदर्शिनियों के लिए काफी होती है। विशाल प्रदर्शिनियों के लिए दिसम्बर मास के अन्तिम सप्ताह के दिन ज्यादा अनुकूल होते हैं।

पैंतीसवाँ प्रकरण

दिल्ली की बड़ी प्रदर्शिनी का आयोजन-संचालन मेरे हाथों से हुआ था। उससे मुझे बहुत प्रकार के विवरण और ज्ञान उपलब्ध हुए हैं। अपनी डायरी से कुछ बातें यहाँ उद्धृत करता हूँ जिससे वे भविष्य के प्रदर्शिनी-संयोजकों के काम आ सकें :-

१. हर एक प्रदेश का काम उसकी विशेषताओं और प्रक्रियाओं के प्रदर्शन के साथ अलग-अलग विभागों में सजाना चाहिए।

२. जिस प्रदेश का काम प्रदर्शित करना हो उसी प्रदेश के प्राकृतिक, भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण में उसकी प्रक्रियाएं दिखायी जानी चाहिए। उस विभाग को देखते ही दर्शक को उस प्रदेश की प्राकृतिक रचना, प्रजा के रहन-सहन और संस्कृति का ज्ञान अवश्य हो जाना चाहिए।

३. भारत के ऐसे प्रदेशीय विभागों की रचना भारत के मानचित्र में प्रदेश के स्थान क्रम से की जानी चाहिए।

४. बोर्ड की ओर से चलाये जानेवाले ग्रामोद्योगों की प्रक्रियाएं भी उपरोक्त रीति और क्रम से प्रदर्शित करने की योजना की जाय।

५. प्रदर्शन के मुख्य प्रवेश द्वार के दाहिनी और बाईं दोनों ओर प्रवेश टिकट बेचने की खिड़कियां रखी जावें। महिलाओं के लिए दोनों ओर एक-एक खिड़की रखी जावें।

६. प्रवेश द्वार के समीप किसी खुली जगह (पार्किंग ग्राउन्ड) में सवारियों के खड़ी करने की और सुरक्षित रखने की व्यवस्था की जावे।

७. भूमिदान मंडप में भारत के एक नक्शे में ग्राफ सहित प्रत्येक प्रदेश में प्राप्त जमीन के अंक दिखाये जावें। विनोबा जी की भूदान यात्रा का

मार्ग और प्राप्त दान के अंक सचित्र आलेखों द्वारा दिखाये जावें।

८. गांधीजी की अस्थि विसर्जन के पवित्र घाट और स्थानों को भारत के नक्शे में सचित्र आलेखनों सहित वतलाया जाय ।

९. कस्तूरवा गांधी निधि के सेवा–केन्द्रों और उनकी प्रवृत्तियों का ज्ञान भारत के नक्शे में सचित्र आलेखों सहित कराना चाहिए ।

१०. गांधी स्मारक निधि केन्द्रों और उनकी प्रवृत्तियों का ज्ञान क्रमांक ९ के अनुसार कराना चाहिए।

११. खादी बोर्ड द्वारा समस्त भारत में चलनेवाले कामों के आलेख, चित्रों आदि का एक स्वतंत्र विभाग खोलना चाहिए।

१२. प्रदर्शिनी भूमि के दृश्य स्थान में वापू मंडप की रचना करनी चाहिए। उसमें वापू के जीवन के महत्व के प्रसंगों के फोटो, चित्र, सामान्य चित्र, उन्हें प्राप्त भेंट का सामान, उनका लिखा हुआ साहित्य, पत्र, डायरियां, प्राप्त मान पत्र, उनके उपयोग में आनेवाली वस्तुओं का संग्रह स्थान आकर्षक लेकिन सादी रीति से सजाया जाया ।

१२. पंडित नेहरू को दुनियां भर में मिली हुई भेंट की वस्तुओं, स्मृति चिन्हों और मानपत्रों का संग्रहालय सजाना चाहिए। ये वस्तुएं हर समय प्राप्त नहीं हो सकतीं । विशेष अवसरों पर ही मिल सकेंगी । इसलिए सामान्य प्रदर्शनोपयोगी सूचनाओं में इस सूचना को सम्मिलित न रखा जावे ।

१४. संसार के सब देशों से हाथकारीगरी के सुन्दर नमूने प्राप्त करके "अन्तर्राष्ट्रीय मण्डप"में सजाना चाहिए राक्षसी यंत्रोद्योगों के होते हुए भी टिके रहे पश्चिमी देशों के हस्तोद्योग और हस्तकला के नमूने मंगाकर इस मण्डप में रखे जावें । (ये वस्तुएं तभी मिलेंगी जब अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी होगी, इसलिए अन्य प्रदर्शिनियों की सूची में से इस सूचना को निकाल दिया जावे ।)

१५. रेल्वे, डाक–तार, सरकारी दफ्तर, सभी प्रकार के लश्करी विभाग इन सब के कपड़े तथा अन्य सामान की आवश्यकता के अंकों का एक

आलेखन तथा इन जरूरतों को यदि खादी और ग्रामोद्योगी माल के
द्वारा पूरा किया जाय तो बेकारी किस हद तक दूर होगी, इसका
आलेख भी बनवा कर रखा जाय। इन सब विभागों के माडल
खादी और ग्रामोद्योग की वस्तुओं द्वारा अलंकृत करके सजाने
चाहिए। उदाहरण के लिए रेल्वे विभाग को लें। रेल्वे स्टेशन में
चलनेवाले कामों के माडल बनाये जायँ जिनमें स्टेशन मास्टर,
गार्ड तथा अन्य छोटे-छोटे कर्मचारियों के माडल खादी के वस्त्रों से
सुसज्जित हों तथा फर्नीचर वगैरह में खादी और ग्रामोद्योगी सामान
का उपयोग किया गया हो। भारत के रेल्वे विभाग की कपड़े की
आवश्यकता, गजों और रुपयों में बतानेवाला आलेख तथा यह आवश्यकता
खादी द्वारा पूरी की जावे तो कितना रुपया ग्रामीणों को रोजी के
रूप में मिले और किस हद तक बेकारी दूर होगी इसका आलेख
बनवानी चाहिए। इसी प्रकार अन्य विभागों के बारे में भी किया जावे।

१६. सरकारी विभाग दफ्तर के केन्द्र नमूने का माडल, उसके कर्मचारियों
के माडल, देश भर में ऐसे कर्मचारी कुल कितने हैं इसके प्रदेश
और विभाग-वार आलेख, उन सबकी जरूरत खादी और ग्रामोद्योग
सामान द्वारा पूरी की जावे तो कितनी खादी और ग्रामोद्योगी माल
खपेगा और उससे कितने ग्रामीणों को कितनी रोजी दी जा सकेगी,
इसका आलेख तैयार कराना और सजाना।

१७. गरीब और धनिक गृहों के माडल बनाने चाहिए। इन सब में
खादी और ग्रामोद्योगी वस्तुओं का उपयोग होने लगे तो उससे कितना
लाभ होगा इसका आलेख होना चाहिए। दोनों के जीवन के विशेष
प्रसंगों के भी माडल आलेखों सहित बनवाना और सजाना।

१८. हर एक राष्ट्र के झंडों के नमूने मंगा कर सजाना चाहिए। भारतीय
ध्वज के क्रमिक विकास बतानेवाले कई नमूने सजाने चाहिए।

१९. भाँति-भाँति के धंधों और व्यवसायों के माडल बनाने, धंधों की वर्तमान
स्थिति और उनके करनेवालों की आजकल की बेकारी दूर करने के उपायों
का आलेख होना चाहिए। इन सब धंधेवालों का काम धंधों ने किस प्रकार

छीन लिया और यंत्रोद्योगवालों के यहाँ किस तरह धन का ढेर लग गया है ये दोनो माडल बनवाना। इन हस्तोद्योगों को प्रोत्साहन मिले तो इन व्यवसायवालों की स्थिति किस प्रकार सुधरे और समृद्धि बढ़े इसके आलेख तैयार कराना।

२०. आदर्श ग्राम का माडल बनवाना और रखना। गांव का धन गाँव में रहे तो वे कितने सुखी बन जावें, इसका माडल और आलेख बना के रखना।

२१. अध्ययनशील दर्शकों को उपयोगी सिद्ध हो इस प्रकार का आलेख और चित्रों का एक स्वतंत्र मंडप सजाना। इन आलेखों में भिन्न भिन्न उद्योगों के प्रमाणभूत अंक दिये गये हों।

२२. डांडी कूच का माडल बनवा कर रखना।

२३. हर एक प्रदेश की ओर से बिक्री की दूकान की योजना रखनी।

२४. धान की खेती की जापानी पद्धति के प्रयोग की सफलता के आलेखों और अंकों का एक स्वतंत्र विभाग सजाना।

२५. प्रदर्शिनी में जो सुशोभन किये जायं वे भारत की प्राचीन कला के अनुरूप हों। उनमें भिन्न-भिन्न विषयों के पोस्टर रखवाये जायें, उदाहरणार्थ देश के करोड़ों हाड़पिंजरों में नयी जान डालनेवाली खादी और ग्रामोद्योगों के काम का पोस्टर, आपकी पोशाक और उसका मूल्य, आप खादी पहनें तो कितनी खादी खपे और कितनी रोजी दी जा सके – मिल के कपड़े पहनें तो क्या परिणाम हो, इसके पोस्टर।

२६. प्रदर्शिनियों में स्वयंसेवक विभाग, स्वच्छता विभाग, मनोरंजन विभाग, रसोई विभाग, तथा समाचार विभागों का प्रबन्ध जमाना और एक सुव्यवस्थित प्रचार विभाग अवश्य रखना।

२७. प्रदर्शिनी में स्थान-स्थान पर पानी की और उसके निकास की व्यवस्था करना। साथ ही साथ कई विश्राम स्थानों और एक सुन्दर उद्यान की रचना करनी।

२८. प्रदर्शिनी के प्रवेशद्वार के पास ही एक विशाल शिशुगृह (बाल भवन) की व्यवस्था की जाय। प्रदर्शिनी देखने आनेवाले हजारों माँ बाप वहाँ अपने बच्चों को छोड़ सकें, इसलिए उस स्थान में घोड़ियों (झूलों) को तथा खबरदारी रखनेवाली स्वयंसेविकाओं की व्यवस्था की गयी हो। साथ ही अनेक प्रकार के खेलों और मनोरंजन के साधन भी रखे गये हों जिसमें बालक खुशी से अपना समय व्यतीत कर सकें। स्थान से लगा हुआ एक सुन्दर बालोद्यान भी हो।

२९. अन्नपूर्णा की व्यवस्था भिन्न-भिन्न स्थानों में की जाय जहाँ ग्रामोद्योगी वस्तुओं से बनाई हुई कई तरह की खाद्य वस्तुएँ प्राप्य हों।

३०. प्रदर्शिनी के लिए कुछ पूर्व तैयारी कर लेनी होती है, वह कर ली जाय, जैसे :–

(अ) प्रदर्शिनी के लिए गाँव से बहुत दूर न हो ऐसा एक बड़ा मैदान पसन्द कर लेना,

(आ) उस मैदान में रास्तों, पानी तथा गटर की पूरी व्यवस्था कर लेनी,

(इ) प्रदर्शिनी का प्लान तैयार करके उनमें जुदे-जुदे विभाग के आकार निश्चित कर लेने,

(ई) प्रदर्शन के लिए आनेवाला माल रेल्वे द्वारा रियायती किराये से आ सकने के लिए रेल्वे अधिकारियों को लिख कर सुविधा प्राप्त कर लेनी।

(उ) भिन्न-भिन्न प्रयोग और प्रक्रियाएं प्रदर्शित करने के लिए आवश्यक साधनों के मंगाने की व्यवस्था कर लेनी,

(ऊ) प्रदर्शिनी की सफलता पूर्वप्रचार पर बहुत कुछ अवलंबित होती है। इसलिए लोगों का आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता रहे, इस प्रकार के समाचार दैनिक पत्रों में प्रकाशित कराते रहने तथा पुस्तक छपा कर वितरण कराने आदि की व्यवस्था कर लेनी।

(ए) प्रदर्शिनी के लिए सम्पूर्ण विवरण सहित मार्गदर्शिका छपा लेनी,

(ऐ) प्रदर्शिनी का उद्घाटन कराने के पहले प्रार्थना और सामूहिक कताई को आवश्यक समझ कर उसकी व्यवस्था कर लेनी,

(ओ) उद्घाटन ज्योति जला के कराया जा सकता है। उद्घाटन विधि सादी परन्तु भव्य और कलामय होनी चाहिए।

(औ) प्रदर्शिनी उद्घाटन का समाचार रेडियो द्वारा प्रकाशित कराने की व्यवस्था करनी चाहिए।

(अं) प्रति दिन शाम को ५–६ बजे भिन्न-भिन्न नेताओं के भाषणों की व्यवस्था कर लेनी,

(अः) रात के समय भिन्न-भिन्न राज्यों के कलापूर्ण लोकनृत्यों और लोक गीतों के प्रोग्रामों की व्यवस्था कर लेनी।

(क) बीमारों अथवा अकस्मात पीड़ितों की दवादारू, उपचार सेवा आदि का प्रबन्ध जमा लेना जिसमें एक छोटे से अस्पताल की जैसी सुविधाएँ प्राप्य हों।

(ख) आग तथा अन्य अकस्मात में उपयोगी सिद्ध होनेवाली रेड-क्रास की व्यवस्था तथा आग के बंबों की यथेष्ट व्यवस्था कर लेना।

(ग) प्रदर्शिनी में महिला दिन, विद्यार्थी दिन वगैरह के अनुरूप विशेष कार्यक्रम रखने चाहिए। सारांश यह कि प्रदर्शिनी आबालवृद्ध सब वर्ग के दर्शकों का आकर्षण स्थान बनना चाहिए और हरएक दर्शक को उसे देख कर खादी और ग्रामोद्योगों के विकास की प्रेरणा मिल जानी चाहिए। प्रदर्शिनी देख कर हर एक व्यक्ति खादी और ग्रामोद्योगों के विकास में कुछ-न-कुछ देकर जावे तथा खादी का सन्देश अपने जीवन में उतारने की प्रेरणा लेकर जावे तभी प्रदर्शिनी को सार्थक हुआ मानना चाहिए।

छत्तीसवाँ प्रकरण

प्रदर्शिनी का खादी के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सन् १९२१ से कांग्रेस के अधिवेशनों के साथ प्रदर्शिनी आयोजन की प्रथा-सी पड़ गई थी। बेलगाम कांग्रेस से पहले के समय में इन प्रदर्शिनियों का रूप स्वदेशी प्रदर्शिनियों का होता था। बेलगाम कांग्रेस में बापू अध्यक्ष हुए। और वहाँ उन्होंने "सूत के धागे में स्वराज" की घोषणा की थी। तब से इन प्रदर्शिनियों में कपड़े का पूरा स्थान केवल खादी को दिया जाने लगा। सन् १९३५ के बाद ग्रामोद्योगों के विषय का भी आग्रह उसमें रखा जाने लगा। ऐसी प्रदर्शिनियों में उन जुदे-जुदे प्रदेशों की जहाँ प्रदर्शन हुए थे अनेक विशेषताएं और कला-कारीगरी के नमूने देखने में आये गये। बहुत सी प्रदर्शिनियाँ देखते रहने से और कई बड़े-बड़े प्रदर्शनों का संचालन करने से मुझे कई प्रदर्शिनियों के विषय की कुछ विशेष घटनाएं याद आ गयी हैं जिन्हें यहाँ लिखता हूं। जिनकी कोई योजना नहीं होती थी जो हाथ पड़ा वही सजा कर प्रदर्शन कर दिया जाता था। ऐसे प्रदर्शनों से लेकर ठेठ दिल्ली के जैसे सुव्यवस्थित और भव्य प्रदर्शनों में भाग लेने के अवसर मुझे मिले हैं। इसलिए मैं अपने खुद के अनुभव के आधार पर हर एक प्रदर्शिनी की खूबियां और कमियां दोनों ही बतलाने का प्रयत्न करता हूं।

सन् १९२४ की बेलगाम की कांग्रेस के समय एक प्रदर्शिनी करने का निश्चय किया गया। गांधीजी उस अधिवेशन के प्रमुख थे। प्रदर्शिनी को सफल बनाने में बड़ी मेहनत करनी पड़ी थी। दिन बहुत कम रह गये थे। प्रदर्शनों की परिपाटी तब नयी होने से उनमें भाग लेने का उत्साह किसी में दिखायी ही न देता था। इसलिए बुला-बुला कर सबको इकट्ठा करना पड़ा था। स्वागताध्यक्ष श्री गंगाधर राव देशपाण्डे प्रतिदिन प्रदर्शिनी की व्यवस्था देखने घोड़े पर बैठ कर आते थे। इस प्रदर्शिनी की दो विशेषताएं मुझे याद रह गयी हैं। सीने के विलायती डोरों के स्थान में देशी मिलों द्वारा बनाये गये सीने के डोरों की रीलें सबसे पहले इसमें रखी गयी थीं। सबसे पहले बनी हुई देशी लालटेनें तथा ओगलेवाटी

का बना कांच का सामान भी इस प्रदर्शिनी में लाया गया था। प्रदर्शिनी मंडप के मुख्य द्वार की रोशनी लालटेनों द्वारा ही की गयी थी।

देश की आजादी की लड़ाई जिन दिनों में स्थगित थी उन दिनों में करांची कांग्रेस का चिरस्मरणीय अधिवेशन हुआ था। उसके साथ भी एक प्रदर्शिनी करने का निश्चय हुआ। बापू का वाइसराय के साथ सुलह सम्बन्धी पत्र व्यवहार चल रहा था। और सुलह की नौका आशा–निराशा की लहरों के झोके खा रही थी। ऐसी अनिश्चितता के समय में यह प्रदर्शन होने जा रहा था। घड़ी भर में 'रुक जावो' और दूसरी ही घड़ी में 'आगे बढ़ो' के सन्देश आते रहते थे। इस प्रदर्शिनी का संचालन प्रारम्भ में डाक्टर चोइथराम गिडवानी को सौंपा गया था। उनका विचार स्वदेशी वस्तुओं के साथ–साथ खादी को स्थान देने का था। स्वदेशी की व्याख्या में मिल के कपड़ों का समावेश हो जाता है। इसलिए मिलों के कपड़ों को भी प्रदर्शन में स्थान मिलनेवाला था। चरखा संघ को यह बात बात मान्य न थी, इसलिए संघ के मंत्री श्री शंकरलाल बैंकर ने प्रदर्शिनी की रचना करने के लिए मुझे जाने को लिखा। उनकी आज्ञा से मैं कराची जा पहुंचा और उनकी सूचनाओं के अनुसार काम प्रारम्भ कर दिया। मैंने डाक्टर चोइथराम गिडवानी को यह कल्पना मान्य करने को बहुत समझाया कि ऐसे प्रदर्शिनियों में कपड़े के क्षेत्र में केवल खादी ही को स्थान मिलना उचित है, मिल के सूत का तो एक धागा भी रखा नहीं जा सकता। वे ऐसा करने में असमर्थ थे। इसलिए प्रदर्शिनी की रचना की जिम्मेदारी उन्होंने मुझे सौंप दी।

शहर में यह बात फैल गयी थी कि स्वदेशी प्रदर्शिनी की बजाय खादी प्रदर्शिनी होनेवाली है। इसलिए उसका कद बहुत छोटा रह जायगा। मैंने विचार किया कि शुरू से ही लोगों के मन पर ऐसी छाप पड़ चुकी हो कि प्रदर्शिनी छोटी होगी और उसमें खास नवीनताएं नहीं होंगी तो लोग उसमें कोई दिलचस्पी नहीं लेंगे और फलतः प्रदर्शन असफल हो जावेगा तो भी प्रदर्शन को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए मैंने पूरी–पूरी सहायता प्राप्त करने के प्रयत्न किये। कराची के प्राण समान श्री जमशेदजी मेहता का सहकार मुझे प्राप्त हुआ। वे प्रखर खादी भक्त थे, इसलिए उनके प्रभाव का मुझे पूरा–पूरा लाभ मिल सका। प्रदर्शिनी के विषय में जनता को सच्ची

स्थिति का ज्ञान कराने के लिए मैंने प्रकाशन विभाग चलाने की प्रथम आवश्यकता महसूस की और प्रदर्शिनी की एक प्रकाशन पत्रिका निकलने लगी। वह गुजराती, सिंधी और अंग्रेजी तीन भाषाओं में निकाली गयी थी। मैं उसमें प्रदर्शिनी की दैनिक प्रगति के समाचार लिखता था और बड़ी संख्या में उसका प्रचार करता था। आखिर लोगों में जागृति की लहर आ गयी।

काश्मीर का बुनाई का काम मय उसके खास-खास प्रयोग और क्रियाओं के प्रदर्शिनी में दिखाया जा रहा था। काश्मीरी घेटा (भेड़) से लेकर बुनाई तक की सारी प्रक्रियाएं कारीगरों द्वारा प्रदर्शित की जा रही थीं। इसी एक विभाग के लिए करीब ११ हजार रुपये खर्च किये गये थे। काश्मीरी मेढ़ लाकर उसकी ऊन कतरने की क्रिया, फिर ऊन की सफाई, धुलाई, मिल[illegible] धुनाई, कताई, बुनाई आदि सारी क्रियाएं बारीकी के साथ दिखायी जा रही थीं। काश्मीर की कातिल ठंढ में रहनेवाली वह भेड़ और वहां के कारीगर कराची की गर्मी को सहन नहीं कर सके। एक दिन एक मेढ़ गर्मी से परेशान हो गया और जीभ निकाल कर हांफने लगा। तुरन्त ही एक बड़ा टब मंगाकर पानी से भर दिया गया और उसमें बर्फ डाल कर घटे को टब में बैठा दिया गया तब कहीं वह स्वस्थ हुआ।

अगले प्रातःकाल में प्रगट होनेवाली पत्रिका के लिए मैंने यह सन्देश लिखाया :-

काश्मीर से आया हुआ मेढ़ा कराची की गर्मी सहन न कर सकने के कारण बीमार हो गया है और उसकी हिफाजत बर्फ के पानी में उसे रख कर की जा रही है।

इस खबर को पढ़ कर बहुत लोगों के मन में कौतूहल पैदा हो गया। शाम को प्रदर्शिनी में घूमनेवाले लोग आ आ कर पूछने लगे कि मेढ़े की क्या खबर है : इससे मुझे विश्वास हो गया कि प्रदर्शिनी पत्रिका के द्वारा जो प्रचार होता है वह सफल है।

समय कम होते हुए भी प्रदर्शिनी की सजावट अच्छी कर ली गयी थी। बड़ी वनस्पति बोकर हरियाली पैदा करने जितने दिन का समय नहीं था। इसलिए मेथी, गेहूं जैसे तुरन्त उगनेवाले पौधे बो कर कुछ हरियाली कर ली गयी थी।

तारीख २१–३–१९३१ के दिन प्रसिद्ध खादी भक्त श्री सतीशचन्द्र दासगुप्ता के शुभ हस्तों से प्रदर्शिनी का उद्घाटन कराया गया था। लोगों की खूब भीड़ लगी थी। तारीख २६–३–३१ को प्रातःकाल की प्रथम घड़ियों में बापू प्रदर्शिनी देखने आये थे। उन्होंने सारी प्रदर्शिनी क्रम से देखने में डेढ़ घंटा लगाया और अन्त में संतोष व्यक्त किया। कांग्रेस के प्रमुख सरदार साहिब भी उसी दिन ७॥ बजे प्रदर्शिनी देख गये।

एक दिन आधीरात के लगभग मैं प्रदर्शिनी में चौकी की व्यवस्था आजमाने के लिए घूमने निकला। एक चौकीदार ने मुझे ललकारा और फिर बड़ी ममता के साथ दुखी दिल से उसने मुझसे कच्छी भाषा में जो कहा उसका हिन्दी अनुवाद यह है :—

> "भाई तमाम दिन काम करते-करते थक जाते होगे, इसलिए तुम तो निश्चित हो कर सोओ। मैं जब तक जिन्दा हूँ तब तक चोरी–चकोरी की चिन्ता तुम्हें नहीं होनी चाहिए।"

नायक के ये शब्द सुन कर मेरे मन में उसकी वफादारी के प्रति सम्मान पैदा हुआ और मैं अपनी छावनी में जा कर सो रहा।

सीमान्त गांधी खान अब्दुल गफ्फार खां अपने लाल कुर्तीवाले खुदाई खिदमतगारों का दल लेकर आये हुए थे। ढोलक बजाते-बजाते वे चारों तरफ घूमा करते थे। जो प्रदर्शिनी शुरू में असम्भव लग रहा था वही अत्यन्त सफल हो गया। लेकिन २२ रातों के जागरण और अत्यन्त परिश्रम के कारण प्रदर्शिनी समाप्त होते ही मैं बीमार पड़ गया, बाँई ओर लकवा का दर्द पैदा हो गया जिसने मुझे दो वर्षों तक पीड़ित रखा।

लखनऊ की प्रदर्शिनी खादी के इतिहास में एक सीमा चिन्ह के समान है। उसमें खादी और ग्रामोद्योगों की प्रक्रियाएँ प्रदर्शित की गयी थीं। ताः २८–३–३६ के दिन बापू के हाथों प्रदर्शिनीका उद्घाटन हुआ। बापू ने इस प्रदर्शिनी को अपनी कल्पना का प्रतिबिंब बताया था और यह आशा की थी कि इसके फल सारे देश को मिलेंगे। इस प्रदर्शिनी के बाद अखिल भारत चर्खा संघ ने एक स्थायी प्रदर्शिनी विभाग रखने का निर्णय किया था। खर्च की दृष्टि से भी यह प्रदर्शिनी काफी सफल रही।

फैजपुर का कांग्रेस अधिवेशन गाँवों में होनेवाले अधिवेशनों में प्रथम था। फैंजपुर अधिवेशन ने देश का मुँह गाँवों की ओर फिरा दिया। उस अधिवेशन की प्रदर्शिनी भी उसके अनुकूल ही थी। बापू को इस प्रदर्शिनी की रचना से गहरा सन्तोष हुआ था। गाँवों के बहुत से मृत प्राय उद्योगों को जीवित करने की प्रेरणा इस प्रदर्शिनी से मिली थी। ऐसी प्रदर्शिनियाँ शहरों की जनता के लिए न हो कर ग्रामीण जनता के विकास और समृद्धि के लिऐ ही होनी चाहिएँ यह प्रतीति होने लगी थी। इस प्रदर्शिनी की रचना में मुख्य करके बाँसों का बड़ी तादाद में उपयोग किया गया। सुशोभन भी बांसों से ही तैयार किये थे। अधिवेशन के भोजनालय में ग्रामोद्योगी समान ही खिलाया गया था। दीपक की ज्योती जलाकर प्रदर्शिनी का उद्‌घाटन करते समय बापू ने यह उद्‌बोध किया था कि देश का उद्धार सूत के धागे में ही समाया हुआ है।

भारत की आजादी के पश्चात जयपुर के कांग्रेस अधिवेशन के समय की प्रदर्शिनी अनेक बातों के लिए चिरस्मरणीय रहेगी। प्रदर्शिनी के केन्द्र-स्थान में बापू मण्डप की रचना की गयी थी। मण्डप के बीचों बीच उनकी गद्दी, तकिया, खड़ाऊँ तथा अन्य वस्तुएँ इस तरह रखी हुई थीं कि उन्हें देखते ही दर्शकों को लगता कि बापू अभी आवेंगे। कोई भी दर्शक इस मंडप में से बिना आंसू गिराये नही निकलता था। बापू खादी प्रवृति के प्राण समान थे। इसकी स्पष्ट प्रतीति इस प्रदर्शिनी से हो रही थी। नयी तालीम के आलेख अनेकों ग्रामोद्योगों की प्रक्रियाएं, घास की सजावट, प्राचीन कला के सुन्दर चित्र इस प्रदर्शिनी की याद दिलाते रहते हैं। यह बड़ी विशाल प्रदर्शिनी थी। ता: १५-१२-४८ के दिन संत विनोबा द्वारा इसका उद्‌घाटन हुआ। उन्होंने अपने प्रवचन में जनता से बापू के अत्यन्त प्रिय खादी-कार्य को अपना लेने की प्रेरणा दी थी और बापू को भावभरी श्रद्धान्जलि अर्पित की थी।

भारत सरकार की राजधानी दिल्ली में खादी और ग्रामोद्योग का जितना चलन है वह बिलकुल थोड़ा ही कहा जायगा। लाखों कर्मचारी तथा बड़े-बड़े अधिकारी वहाँ निवास करते हैं। उनको खादी और ग्रामोद्योगों की बात समझाना बहुत जरुरी था। अपने माननीय राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद तो सबसे पुराने खादी-कार्यकर्ता हैं। उनकी खादी में अपार श्रद्धा है। उन्होंने खादी का अर्थशास्त्र नामक पुस्तक लिखी है। दिल्ली में खादी के प्रति सक्रिय प्रेम बढ़ाने के हेतु उन्होंने राष्ट्रपतिभवन में एक उत्सव किया और उसके साथ खादी और ग्रामोद्योगों की एक छोटी प्रदर्शिनी भी लगवाई।

भवन में से आवश्यक फर्नीचर निकलवा कर उसीमें, मैंने प्रदर्शिनी के नमूने सजा दिये। इसी प्रदर्शिनी में मैंने सब से पहली बार अम्बर चरखा रखवाया। उस पर राष्ट्रपतिजी ने तथा प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु ने प्रदर्शिनी में सूत काता। सभा में राष्ट्रपतिजी, पंडित जी, अर्थ मंत्री श्री देशमुख और उद्योग व्यापार मंत्री श्री कृष्णमाचारी के भाषण हुए। बाद में सब लोग प्रदर्शिनी देखने पधारे। यह प्रदर्शिनी इस सभा के अवसर पर ही सजायी गयी थी। लेकिन सब कर्मचारियों के परिवार जनों को भी यह प्रदर्शिनी दिखाने की राष्ट्रपति की इच्छा थी। इसलिए एक दिन और प्रदर्शिनी रही।

इस छोटी सी प्रदर्शिनी के अनुभव पर राष्ट्रपति जी ने दिल्ली में एक बड़ी प्रदर्शिनी करने का सुझाव मुझे दिया उस समय कलकत्ते में कांग्रेस अधिवेशन की तैयारियाँ हो रही थीं। कांग्रेस प्रमुख पंडित जवाहरलाल नेहरू ने ऐसा निर्णय कर दिया कि इस समय जो प्रदर्शिनी कलकत्ते में अधिवेशन के साथ होने का उपक्रम है उसे वहाँ न करके दिल्ली में ही किया जाय। नई और पुरानी दिल्ली के संगम के सामने जो रामलीला मैदान है उसमें प्रदर्शिनी की रचना की गयी। प्रदर्शिनी का उद्घाटन ता. ३ अप्रेल को होनेवाला था। मैं तीन महीने पूर्व दिल्ली जा पहुंचा था। मैंने सारे देश के रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं के सहकार की याचना की। सैंकड़ों कलाकार सजावट के काम में लगे। सैंकड़ों स्वयंसेवकों को तालीम दी जाने लगी। इन सबके लिए भोजनालय की रचना की गयी। उसमें सारा सामान ग्रामोद्योगी काम में लाने का आग्रह रखा गया। करीब १,५०० व्यक्तियों को हाथ चक्की या ऊंट चक्की का पिसा आटा, हाथ-कुटे चावल, बैल की घानी का तेल इत्यादि का प्रबन्ध करा लिया गया है। ऊंट से चलाई जानेवाली चक्की पर आटा-पीसा जाता था

रोटी करने तथा रसोई के दूसरे कामों के लिये महिलाओं की सेवा की जरूरत पड़ी। श्रीमती रामेश्वरी नेहरूने कस्तूरबा केन्द्रों में से ४० महिलाओंको रसोईकाम के लिए और १३२ महिलाओं को स्वयंसेविका बनने के लिए भेज दिया। खादी और ग्रामोद्योगों की तमाम प्रक्रियाओं का प्रदर्शन करने के लिए देश भर में से ८५० पुरुष व स्त्रियाँ पहुँच गयीं थीं।

सर्दी का मौसम बीत रहा था। कभी धूल उड़ती तो कभी पानी बरसने

लगता । इस कारण से प्रदर्शिनी निर्माण के काम में बार-बार रुकावट आ जाती थी। अन्तिम दो सप्ताहों में तो दिन रात काम चालू रखना पड़ता । अन्तिम सप्ताह में प्रति दिन २० घंटे काम कराया गया । प्रदर्शिनी के चारों ओर टीन की मजबूत दीवाल खड़ी की गयी थी । क्योंकि प्रदर्शिनी में लाखों रुपयों के माल की हिफाजत रखने का जोखम था । पक्के विशाल मार्गों, फूलों से भरी क्यारियों तथा जगह-जगह पीने के पानी के स्थानों की रचना कर ली गयी थी ।

प्रदर्शिनी में सफाई का पूरा प्रबन्ध था । कामचलाऊ गटरों और मोरियों की पूरी व्यवस्था थी । ज़रा भी कूड़ा कहीं गिरा हो कि उसे उठा कर निश्चित स्थान पर डलवा दिया जाता था । आग बुझाने के साधनों की तथा रोगी की सेवा और इलाज के लिए दवाखाने की सुविधाएँ मुहैया की जा चुकी थीं।

प्रवेश द्वार में घुसते ही बाल-भवन की रचना गयी थी । उसमें सैकड़ों बालकों के एक साथ खेलने की सुविधा थी जिससे प्रदर्शिनी देखने आनेवाले अपने बालकों को बाल-भवन में हंसता खेलता छोड़ कर शान्ति से प्रदर्शिनी देख सकते थे । नन्हें बच्चों को संभालने के लिए स्वयंसेविकाएं उपस्थित थीं । हर एक बालक को नम्बर का बिल्ला दिया जाता था । जिससे जरूरत पड़ने पर लाउड स्पीकर पर घोषाण करके उसके मातापिता को फौरन बतलाया जा सकता था । पंजाब के लोग अपने बच्चों के दूसरों की हिफाजत में छोड़ने से हिचकिचाते थे। लेकिन इस विभाग की सुन्दर व्यवस्था को देख कर वे भी अपने बच्चों को वहां छोड़ने लगे ।

खादी और ग्रामोद्योग इन दो मुख्य विभागों में प्रदर्शिनी बटी हुई थी। दोनों के अनेक उप विभाग बनाये गये थे । खादी और ग्रामोद्योगों की प्रत्यक्ष प्रक्रियाओं वाला विभाग अत्यन्त आकर्षक बना था । खादी की बिक्री के लिए विशाल बाजार था । उनके उपरान्त बापू मंडप, भूदान मंडप, खादी व ग्रामोद्योग नमूना मंडप आदि सुन्दर मंडपों की रचना की गयी थी ।

देश भर के बहुत से कार्यकर्ता पुरुष और स्त्रियां करीब महीना महीने तक यहां रहे । इसलिए उनके साथ समक्ष में मिल कर विचार विनिमय करने और भिन्न-भिन्न प्रान्तों के काम की हकीकत जान लेने का बड़ा सुन्दर अवसर मिला था ।

एक विभाग में अन्तर्राष्ट्रीय मंडप सजाया गया था। बड़े–बड़े यंत्रोद्योगों के बीच में भी दुनिया के सभी देशों में ग्रामोद्योग और गृह उद्योग टिके रहे हैं इसके ज्वलन्त उदाहरण इस मंडप में दिखाये गये थे। चौदह मुल्कों ने अपने–अपने राष्ट्रों के ग्रामोद्योगों और गृह उद्योगों के नमूने भेजे थे।

बन्दोबस्त के लिए कांग्रेस स्वयंसेवक दल की ओर से स्वयंसेवक काफी संख्या में आ गये थे। उनके उपरान्त पुलिस की छावनी भी थी ही।

प्रदर्शन की सफलता के लिए तथा उसके समाचार समय–समय पर जनता में फैलाने के लिए व्यवस्थित प्रचार कार्य चलाया गया था। देश भर में समाचारपत्रों ने समय–समय पर प्रदर्शिनी के समाचार प्रकाशित करके प्रदर्शिनी की सफलता में खूब मदद की थी। कई पत्रों ने प्रदर्शिनी पूर्तियाँ प्रकाशित की थीं जिनमें प्रदर्शिनी की विशेषताओं का विस्तृत उल्लेख था। स्टेशनों तथा सार्वजनिक स्थानों पर पोस्टर लगवाये गये थे। सरकारी विभागों की ओर से सूचनाएँ निकलवायी गयी थीं कि तमाम कर्मचारी सपरिवार प्रदर्शन देखने जावें।

उद्घाटन के पहिले राष्ट्रपति जी तथा पंडित जवाहरलाल जी नेहरू ने प्रदर्शिनी देखने की इच्छा व्यक्त की थी। पंडितजी के सचिव ने यह माँग की थी कि ४५ मिनट में समग्र प्रदर्शिनी दी दिया जाय। प्रवेश करते ही पंडितजी भूदान मंडप में जाकर विनोबाजी की मूर्ति के पास मिनिट भर रुके रहे। इस विभाग को देखने के लिए उन्हें तीन के बजाय पांच मिनट लग गये। अन्तर्राष्ट्रीय मण्डप देख कर उन्हें बहुत संतोष हुआ। उनके साथ उनकी बहिन श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित भी थीं। उन्हें यह मंडप बहुत ही रुचिकर प्रतीत हुआ। पंडितजी के पास ऐसे कई देशी परदेशी नमूनों का संग्रह है। उन्होंने सूचना दी कि भविष्य में जब कभी प्रदर्शिनी हो तो उनके पास के नमूनों का भी उपयोग किया जाय। श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने भी भविष्य में दुनिया भर से ऐसे नमूने प्राप्त करा देने का वचन दिया। बापू मंडप में तो पंडितजी की मुद्रा बहुत ही भावपूर्ण हो गयी थी। ४५ मिनट पूरे हो चुके थे, इसलिए जब उनके सचिव ने उनका ध्यान दिलाया तो उन्होंने कहा कि कुछ परवाह नहीं और फिर पौने दो घंटे तक वे बड़ी एकाग्रता से प्रदर्शिनी देखते रहे।

उन्होंने श्री वैकुंठराय मेहता से कहा कि इतनी बड़ी प्रदर्शिनी जनता २२ दिन में नहीं देख सकती, इसलिए आपको समय बढ़ाना होगा। हमारी ओर से उत्तर दिया गया कि आप की सूचना बिलकुल सही है। लेकिन देश भर से कार्यकर्ता व भाई बहनें डेढ़-दो महीना से काम छोड़ कर यहाँ बैठे हुए हैं, उन्हें और अधिक दिनों तक रोकने में कठिनाई होगी।

दिल्ली में जो दूसरी प्रदर्शिनियाँ हुआ करती हैं उनकी तुलना में यह प्रदर्शिनी अलग ढंग की अनोखी थी। उसकी उद्घाटन विधि भी अनोखी रीति से ही की गयी थी। कुर्सी के बदले सब जमीन पर बैठे थे। दीप जला कर उद्घाटन की विधि करायी गयी थी। उद्घाटन के पहले प्रार्थना थी और सामूहिक कताई से कुछ समय तक वह स्थान गूँजता रहा था।

पंडित जवाहरलाल जी प्रदर्शिनी से बड़े खुश हुए। अनेक भाति के प्रदर्शिनियों में इस प्रदर्शिनी ने एक अनोखा ही प्रकार उपस्थित किया था। इसकी रचना घास-फूस से की गयी होने के बावजूद बड़ी कलापूर्ण थी। सरकारी मंत्रीगण तथा पार्लमेन्ट के सदस्यों के लिए रोज सबेरे समय सुरक्षित रखा जाता था। जनता के लिए शाम को ३ बजे प्रदर्शिनी खोली जाती थी।

अन्तर्राष्ट्रीय दिवस के दिन देश-देश के प्रतिनिधियों ने प्रदर्शिनी बड़ी चाव से देखी और बिना माँगे अपनी ओर से उन्होंने यह आश्वासन दिया कि भविष्य में ऐसी प्रदर्शिनी हो तब उन्हें ठीक समय पहले ही लिखा जाय तो वे अपने-अपने देश से ऐसे अनेक प्रकार के नमूने मँगा देंगे। अमेरिका, जर्मनी और रूस के प्रतिनिधि लगभग दो घंटे एक प्रदर्शिनी में रहे। अमेरिका के प्रतिनिधि अपनी धर्मपत्नी के साथ आये थे। उनकी पत्नी ने अम्बर चरखे के पास पहुँचकर पूछाः "इस चार तकुवोंवाले चरखे से १ तकुवेवाले चरखे पर कातनेवालों को हानि तो नहीं होगी?" उत्तर में कार्यकर्ता ने अम्बर चरखे की विशेषता समझाते हुए कहा कि यह चरखा पुराने चरखे का स्थान ले लेगा, इसलिए कातनेवाले की आय तो बढ़नेवाली है।

जर्मनी के प्रतिनिधि ने कहा-"दूसरी बार ऐसा प्रदर्शन करो तो जर्मनी को भूल न जाना। इन सब मेहमानों का सत्कार नींबू व शहद के शर्बत और नीरा की आइस्क्रीम से किया गया था।

एक दिन 'महिला दिवस' रखा गया था जिससे शहर की पर्देवाली महिलाएं प्रदर्शन देख सकें। इस दिन को सफल बनाने के लिए आमियां मिलिया संस्था के द्वारा पर्देवाले प्रत्येक घर में प्रदर्शिनी देखने का निमंत्रण भेजा गया था।

प्रदर्शिनी के निमित्त बने कार्यकर्त्ता भाई-बहिनों में से इस मुद्दत में किसी ने ग्रामीण दियासलाई की तो किसी ने अखाद्य तेलों से साबुन बना लेने की और किसी ने कोई और ही उपयोगी क्रिया की तालीम ले ली थी। मोमिन वैलफेयर सेन्टर की करीब १० बहिनों ने चरखे चलाना रु. . लिया था।

प्रदर्शिनी का व्यय करीब साढ़े-पांच लाख रुपया हुआ था। बहुत लोगों ने यह प्रदर्शिनी बड़ी अध्ययनशीलता से देखी। संसद में इस के विषय में उपयोगी सवाल-जवाब हुए। प्रदर्शिनी की वजह से खादी और ग्रामोद्योगी वस्तुओं की बिक्री पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा, यह लिखे बिना मैं नहीं रह सकता।

काठियावाड़ नाम से हम जिस प्रदेश को पुकारते हैं वहाँ 'काठी' जाति के लोगों के अनेक छोटे-छोटे बाड़े थे। भारत आजाद हुआ और वे सब बाड़े अदृश्य होकर वहाँ सौराष्ट्र (सब का राष्ट्र) बन गया। अनेक प्रकार की लगानों और करों से प्रजा ने मुक्ति पायी। पुराना जंगली चित्र मानों स्लेट पर से मिट गया और सौराष्ट्र जनक श्री ढेबर भाई को मानों बिलकुल कोरी स्लेट सेवा-काम करने को मिली। विशाल हृदय वाले इस सर्वप्रिय चित्रकार ने उस स्लेट पर बड़े सुंदर चित्र बनाए।

बापू के जो प्रिय कार्य थे वे उनकी सीधी देख-रेख में एक के बाद दूसरे सौराष्ट्र में व्यवस्थित जमा दिये गये। सौराष्ट्र रचनात्मक समिति ने अपने रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं के दल के द्वारा खादी और ग्रामोद्योगों के केन्द्र समस्त सौराष्ट्र में जहाँ तहाँ चालू कर दिये। सौराष्ट्र के और साथ ही सारे देश के खादी और ग्रामोद्योगों का प्रत्यक्ष ज्ञान कराने के हेतु राजकोट में एक बड़ी खादी – ग्रामोद्योग प्रदर्शिनी हुई। सौराष्ट्र के भाँति-भाँति के रचनात्मक कामों का सुंदर आलेखन वहाँ देखने को मिला। प्रदर्शिनी की रचना भव्य थी। सौराष्ट्र के सागरतट की विशेषताओं और सौराष्ट्र की कला कारीगिरी से प्रदर्शिनी भरपूर और सुशोभित थी। तो भी प्रदर्शिनी की एक खास विशेषता यह थी कि ग्रामोद्योग की वस्तुओं में से वहाँ खाने-पीने की चीजें विपुल मात्रा में प्राप्य थीं और अगणित दर्शकों के लिए वे आकर्षण केन्द्र

बन गयी थीं। इस प्रदर्शिनी के कामों में महिलाओं और महिला मंडलों ने आगे बढ़कर हाथ बटाया था।

इस प्रदर्शिनी में से मुझे कई ऐसे नमूने याद हो गये हैं जिन्हें मैं सारे देश में प्रचार के लिए उपयुक्त मानता हूँ। मिट्टी का रेफ्रीजरेटर (पानी ठंडा करने का पात्र) सौराष्ट्र के एक कुम्हार ने बनाया था। सादा, सरल और सस्ता यह पात्र प्रदर्शन में लाया गया था। फल, साग, दूध इत्यादि को ताजे और सुरक्षित रखने के लिए हजार डेढ़ हजार रुपयों की कीमत वाले रेफ्रीजरेटर तो धनी लोग ही खरीद सकते हैं। लेकिन यह रेफ्रीजरेटर चाक द्वारा घड़े बनानेवाले एक कुम्हार ने बनाया था। इसमें दूध, घी, फल ३–४ दिन तक ताजे रह सकते थे। उसका मूल्य था केवल ढाई रुपया। उसके माडल पर से देश का कोई भी कुम्हार उसे बना सकता है।

सारे देश के कोने–कोने में जो चूल्हे रसोई बनाने के काम में आते हैं उनमें ईंधन खूब जलता है और धुआँ भी इतना होता है कि रसोई करनेवाला परेशान हो जाता है। एक अन्वेषणकर्त्ता ने बिना धुएँ के चूल्हे की खोज कर ली। चूल्हे का धुआँ बाहर निकाल देने के लिए एक चिमनी चढ़ा दी। यह चिमनी भी साधारण खपरैल की बनाई गयी थी। इस चूल्हे के दो लाभ मालूम हुए। एक तो ईंधन कम जले दूसरे धुएँ से बिलकुल कष्ट न हो। इसके अलावा रसोई घर भी इस चूल्हे से काले हो जाने से बचते हैं। ऐसे चूल्हे का प्रचार राज्य बोर्ड की ओर से गाँव–गाँव में किया जा रहा है, लोगों को इनकी उपयोगिता समझा कर उनके घरों में ऐसे चूल्हों की रचना कर दी जाती है।

बैलगाड़ी में खादी और ग्रामोद्योग की वस्तुओं को सजा कर उसे गाँवों में प्रचारार्थ ले जाना यह खादी व ग्रामोद्योग प्रचार की अनूठी रीति है और आजमाने योग्य है। एक गाँव से दूसरे गाँव को जाते समय सारा माल गाड़ी में सजा दिया जाता है। यदि किसी गाँव में खादी–प्रचार के लिए रुकना हो तब गाड़ी के चारों ओर के पर्दे गिरा कर उस पर सारा माल सजा लेते हैं। इस तरह यह छोटी सी चलती फिरती दूकान खादी का सन्देश गाँव–गाँव में बहुत कम खर्च से पहुँचा सकती है। यह योजना केन्द्रीय खादी बोर्ड को बहुत आकर्षक लगी और प्रचार की इस नयी नीति को आजमाने के लिए ऐसी छः गाड़ियाँ बनवा कर उन्हें इस देश के

छः अलग-अलग भागों में भेजा गया है। एक गाड़ी बनवाने का खर्च ग्यारह सौ रुपयों के लगभग होता है।

महाराव के ज़माने में कच्छ प्रदेश बहुत ही अवनत अवस्था में था। प्रगति की कोई भी लहर वहाँ प्रवेश नहीं करने पायी थी। आजादी के बाद भी तुरंत ही खादी-ग्रामोद्योगों का कोई काम यहाँ शुरू नहीं किया जा सका था। सन् १९५५ की गांधी जयन्ती के अवसर पर कच्छ के डाकघरों में खादी की हुंडियाँ भेजी गयी थीं। २५ हजार रुपयों की हुंडियाँ कच्छ में बिकी थीं। हुंडी खरीदनेवालों को खादी पहुँचाना आवश्यक था। भुज में एक छोटी सी दूकान में खादी भंडार खोला गया। इस दूकान पर हुंडी खरीदनेवाले लोग तो खादी लेने आते ही थे लेकिन साथ ही और ग्राहक भी आकर खादी माँगते थे। यह देखकर ऐसा महसूस हुआ कि खादी-बिक्री के लिए यदि व्यवस्थित प्रबंध हो जाय तो बिक्री जरूर ही होगी। कच्छ के लिए खादी का आकर्षण अभी नया ही था। भुज में प्रदर्शिनी की योजना की गयी। कमिश्नर के सलाहकार श्री प्रेमजी भाई ने उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। केन्द्रीय सरकार के मंत्री माननीय जगजीवन राम ने उसका उद्घाटन किया। ऐसी प्रदर्शनी कच्छ के इतिहास में अभूतपूर्व थी। खूब प्रचार हुआ। जनता प्रदर्शिनी देखने को आतुर होने लगी। कोई गाड़ी पर बैठ कर आ रहा था तो कोई घोड़े या ऊँट पर सवार हो कर आता दिखायी देता था। इस प्रदेश की प्रजा का एक चौथाई भाग जरूर प्रदर्शिनी देख गया होगा। प्रदर्शिनी देखकर वापिस जाते हुए एक महाशय से मैंने पूछा, "भाई, क्या देख चले?" उत्तर मिला, "प्रदर्शिनी देखकर हमें यह होश आया कि गाँवों में से कुछ खो गया है और जो खो गया है उसे वापिस अपने गाँवों में ले आने का मार्ग भी हमें इस प्रदर्शिनी ने दिखाया है और सिखाया है।"

संसार की दृष्टि में पिछड़ा हुआ गिने जानेवाले एक मनुष्य में भी कितनी समझ भरी हुई थी यह मैंने जाना। कच्छ में बुनकर हैं। वहाँ की रेशमी बुनाई की अतलस और पांच पट्टा नामक कपड़े की जातियाँ प्रसिद्ध हैं। चांदी का नकशी काम, भरत काम, रेशम पर आरी भरत का काम इत्यादि कई उद्योग वहाँ चल रहे थे और धीरे-धीरे बन्द हो जाने के समीप पहुँच गये थे। राव के समय में कच्छ की कला कारीगरी को संरक्षण देने और उसका संग्रह करने के लिए एक अच्छे

संग्रह स्थान की रचना हुई थी। कच्छ की प्राचीन और नवीन कारीगरी के नमूने एकत्रित हुए हैं। उसका क्यूरेटर (संग्रहालय का व्यवस्थापक) एक अध्ययनशील और कला-पारखी व्यक्ति है। इसलिए उसके पास से कच्छ के अनेक कारीगरों के विषय का ज्ञान हासिल हो सका। कच्छ का **आरी भरत** काम किसी काल में बहुत प्रसिद्ध था। धीरे-धीरे वह कम होता गया। आजकल इस कला की जानकार मात्र दो महिलाएं रह गयी हैं। यदि उनके पास से इस कला का ज्ञान दूसरे युवक युवतियों को न सिखाया गया तो दुनिया से यह सुन्दर कला अदृश्य हो जायगी। आभला के भरत काम का मुझे परिचय है। लेकिन मैंने कच्छ में आकर इस कला का जो स्वरूप देखा वह मेरे लिए बिलकुल नया और अद्भुत था। ऐसी कारीगरी को देश में फिर से विकसित करना चाहिए।

भिन्न-भिन्न कामों द्वारा उपयोग में लायी जानेवाली वस्तुएं जैसे कि भरत से भरी हुई झूलें, चंदरवे और पिछवाड़ वगैरह की डिजाइनें और कारीगरी अपने टेबल क्लाथ, पलंग पोश, खिड़कियों के पर्दों आदि में उतारी जाने लायक हैं। ऐसे काम की माँग और कद्र सिर्फ अपने ही देश में नहीं है बल्कि दुनियाँ के दूसरे देशों में भी है।

इस प्रदर्शिनी में साठेक हजार रुपयों का खर्च हुआ था। लेकिन उसका लाभ बहुत ज्यादा हुआ। इसमें कई उद्योगों को पुनर्जीवित होने की आशा मिली और खादी तथा ग्रामोद्योगों सम्बन्धी रचनात्मक काम का प्रारम्भ भी कच्छ में इस प्रदर्शिनी से हुआ।

अमृतसर के कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर भी (१९५५) खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शिनी की रचना की गयी थी। मद्रास और अमृतसर की दोनों प्रदर्शनियाँ अखिल भारतीय आकार की बड़ी प्रदर्शिनियाँ कही जानी चाहिएं। कांग्रेस की कार्य-समिति ने केन्द्रीय बोर्ड के साथ जो नीति निश्चित की थी उसी नीति के अनुरूप ये दोनों प्रदर्शिनियाँ हुई थीं। उनमें स्वागतसमिति का वर्चस्व विद्यमान था। प्रदर्शिनी की रचना सुन्दर थी लेकिन व्यवस्था में कई बार अड़चनें आ जाती थीं।

अमृतसर प्रदर्शिनी के समय एक बड़ी गुत्थी सामने आ गयी थी। अप्रमाणित ऊनी खादी बिक्री करनेवाली दो दुकानों को स्वागत समिति की ओर से बिक्री की आज्ञा मिल गयी थी। कांग्रेस और खादी बोर्ड की नीति का ऐसा मुद्दा

भंग कैसे सहन हो सकता था? शुरू में ही इस विषय की शिकायत की जा चुकी थी लेकिन सुनवाई नहीं हुई थी। एक दिन के बाद दूसरा गुजरता गया। फिर, तो मैं स्वागत समिति के प्रमुख से मिला। उन्होंने कहा "जी, प्रबंध हो जायगा।" मैंने फिर कहा "यह चौथा दिन है। अभी तक प्रबंध नहीं हुआ है।" इस पर भी उन्होंने आश्वासन दिया "आप बेफिक्र रहिये। कल तक प्रबंध हो जायगा।" मैंने विश्वास कर लिया। लेकिन मन में यह डर लग रहा था कि जैसे चार दिन सुनी-अनसुनी करते-करते बीत गये हैं वैसे ही पांचवां दिन भी न बीत जाय। इसलिए प्रदर्शिनी में उपस्थित सब कार्यकर्त्ताओं से मैंने सारी बातें कह सुनायीं। सभा में निर्णय हुआ कि यदि कल रात तक कुछ परिणाम न हुआ तो परसों सवेरे हम लोग सब काम बंद रखेंगे। इस निर्णय की सूचना मैंने कांग्रेस के मंत्री श्री श्रीमन्नारायण जी को लिखित भेज दी। उन्होंने भी स्वागत समिति के मंत्री को लिखा और तुरन्त ही भूल सुधार लेने की सूचना दी। दूसरे दिन की शाम होने को आयी तो भी स्थिति में कुछ अन्तर न पड़ा। तीसरे दिन प्रातःकाल मैंने सब कार्यकर्त्ताओं के साथ मशवेरा करके निश्चय किया कि अगले दिन सुबह से सब कामकाज बन्द कर दिया जाय, दरवाजा बंद रखा जाय और दूकान के बाहर बैठकर चरखा कातने तथा रामधुन करने का कार्यक्रम रखा जाय।

मैंने भी अपना यह निश्चय कह सुनाया, "जब तक अप्रमाणित खादी के स्टाल उठ न जायें तब तक आज मैं अपना प्रथम भोजन छोड़ रहा हूँ। शाम के भोजन की बात रामजी जानते होंगे।" फिर क्या था, प्रदर्शिनी की धूमधाम एकाएक स्तब्धता में परिणत हो गयी। तुरंत ही सन्देशवाहक दौड़े आये और बोले कि "अप्रमाणित माल हटा दिया जायगा। सब भाई अपने-अपने स्टाल खोल लें।" लेकिन उनसे कह दिया गया कि जब तक अप्रमाणित माल प्रदर्शिनी में से हट नहीं जाता तब तक कोई स्टाल नहीं खुलेगा। तब कहीं अप्रमाणित दूकानों का माल प्रदर्शिनी के संचालकों के कब्जे में आया और चार बजे से प्रदर्शिनी का कार्य यथापूर्वक शुरू हुआ। मैंने सुबह भोजन न करने का अपना निश्चय प्रकट किया था लेकिन मुझे खबर मिली कि छोटे बालकों को छोड़कर उस समय कोई भी भोजन करने नहीं गया था।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ऐसी प्रदर्शिनियाँ अवश्य देखते हैं। अमृतसर की

प्रदर्शिनी देखने के लिए वे ३० मिनट का अवकाश लेकर आये थे। अभी वे चौथे भाग का प्रदर्शन ही देख पाये थे कि ३० मिनट खत्म हो गये। 'अब उनकी क्या अच्छा है' यह पूछे जाने पर उन्होंने कहा 'फिक्र मत करो, आगे बढ़े चलो'' डेढ़ घंटे तक वे प्रदर्शन को बड़े चाव से से देखते रहे। मैंने उनसे हँसते-हँसते कह दिया, "दिल्ली में बोर्ड की ओर से एक भवन की स्थापना की गयी है जिसे आपने अब तक नहीं देखा है' उस भवन की एक दुकान इस प्रदर्शिनी में भी है। कम से कम उसे तो देख लीजिए।' वैसे ही हंसकर उन्होंने उत्तर दिया, "आपने मुझे कब बुलाया था?" निकट भविष्य में ही ता० १३ अप्रैल को दिल्ली भवन का वार्षिकोत्सव होनेवाला था। उसका प्रमुख बनने की मेरी प्रार्थना उन्होंने वहीं मंजूर कर ली। समय हो चुका था तो भी एक फोटोग्राफर ने खादी कार्यकर्त्ताओं के साथ पंडितजी का फोटो लेने की प्रार्थना की। पंडितजी फौरन अपना एक हाथ श्री वैकुंठ राय मेहता के हाथ में रखकर और दूसरा मेरे हाथ में रखकर तैयार हो गये। अन्य कार्यकर्त्ता भी शीघ्र ही यथास्थान सज गये और फोटो ले लिया गया।

अमृतसर प्रदर्शिनी के कड़वे अनुभव के बाद कांग्रेस कार्यकारिणी ने यह निर्णय कर लिया कि प्रदर्शिनियों की सीधी जवाबदारी अखिल भारत खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड को सौंप दी जाय।

सूरत में की गयी प्रदर्शिनी भी अखिल भारतीय स्तर की थी ऐसा कह सकते हैं। उसकी विशेषताएं संक्षेप में लिखूं तो यह थी—प्रदर्शिनी के चारों ओर टीन की दीवाल के स्थान में बांस और घास की कलापूर्ण बाड़े, नयी तालीम के आचेहुब आलेखन तथा सफल प्रयोग, और बालवाड़ी की सुन्दर रचना। दूसरे इस प्रदर्शन में भारत के वस्त्र उद्योग का इतिहास अकों और चित्रों द्वारा बड़ी अच्छी तरह से बताया गया था। इससे अनेक प्रेक्षकों को देश के वस्त्रोद्योग की उन्नति और अवनति का पूरा ज्ञान हो जाता था।

हिन्दुस्तान के टुकड़े हो जाने के कारण त्रिपुरा नाम के एक छोटे से राज्य में यातायात की एक गुत्थी पैदा हो गयी थी। कलकत्ता और त्रिपुरा के बीच में पूर्व पाकिस्तान आ जाने से उसके साथ का हिन्दुस्तान का रेल्वे व्यवहार बिलकुल कट गया। कलकत्ते से त्रिपुरा के मुख्य नगर अगरतला अब केवल

विमान मार्ग द्वारा ही जा सकते हैं। रेल्वे मार्ग से जाना चाहें तो एक बड़ा चक्कर घूमकर आसाम मणिपुर होकर जावें तो भी वहाँ से अगरतला १४२ मील दूर रह जाता है। परंतु ऐसा करना तो आर्थिक दृष्टि से अनुकूल नहीं हो सकता। देश भर में खादी हुंडियां डाक घरों द्वारा बिक रही थीं तब अगरतला में भी चार सौ रुपये की हुंडियाँ बेची गईं। अब वहां खादी पहुंचाने का प्रश्न उपस्थित हुआ। वहाँ कैसे पहुंचा जाय यह समझ में नहीं आ रहा था। कलकत्ता जाने पर पता चला कि अगरतला को रुई की गाँठ, सीमेंट, लोहान आदि पदार्थ भी विमान द्वारा ही भेजे जाते हैं। कलकत्ते से अगरतला जाने आने का किराया विमान से १०० रुपया होता है। अगरतला की कांग्रेस के प्रमुख श्री उमेश बाबू उस समय कलकत्ते में ही थे। इसलिए मैं उनके साथ ही त्रिपुरा गया। इस प्रदेश की विपुल प्राकृतिक संपत्ति का उपयोग करने के हेतु से त्रिपुरा में खादी बोर्ड का काम व्यवस्थित करने का निर्णय किया गया। एक प्रदर्शिनी का भी आयोजन किया गया।

त्रिपुरा के इतिहास में ऐसी यह पहली प्रदर्शिनी थी। खादी और ग्रामोद्योगों के प्रत्यक्ष प्रयोगों को देखकर वहाँ की जनता में खादी के लिए उत्साह जागृत हुआ। अटारी पर से करीब ३०० चरखे नीचे उतारे गये और सामूहिक कताई की गयी। त्रिपुरा में लगभग ५० हजार मन कपास पैदा होती है। सारा का सारा कपास वहीं वस्त्रों का रूप लेकर उपयोग में आ जावे ऐसी योजना की गयी। वहाँ दियासलाई १ आना फी बक्स के हिसाब से बिकती है। ग्रामीण दियासलाई वहाँ सरलता से बनायी जा सकती है। बाँस के जंगलों से यह प्रदेश भरा हुआ है। इन बाँसों का उपयोग दियासलाई की तीलियाँ बनाने में किया जाय तो सस्ती ग्रामीण दियासलाई उपयोग के लिए प्राप्त हो सकें। ग्रामीण दियासलाई की तालीम लेने के लिए एक व्यक्ति को कलकत्ते श्री सतीशचन्द्र दास गुप्ता के पास भेजा गया और उनके द्वारा अगरतला में दियासलाई का उत्पत्ति केन्द्र खोलने का निश्चय किया गया। वहाँ तेल बीज यानी तेलहन काफी तादाद में पैदा होता है और बाहर से आने वाला तेल महंगा होता है। स्थानिक पुराने ढब की घानी से तेल पूरा नहीं निकाला जा सकता इसलिए वहाँ सुधरी हुई घानियां सहकारी समितियों के द्वारा शुरू कराने का विचार किया गया। गन्ने की खेती वहां काफी होती है। लेकिन बाहर से

आने वाली शक्कर महंगी पड़ती है। इसलिए खांडसारी का केन्द्र खोलने का भी निश्चय किया गया।

निष्णातों की जाँच के अनुसार मधुमक्खी पालन के लिए यह प्रदेश सर्वोत्तम है। इस प्रदेश में मणिपुरी लोगों की बस्ती है। वहाँ ऐसी प्रथा है कि कन्या जब बुनना सीख ले तभी वह विवाह के योग्य मानी जाय। इसलिए कातने बुनने के काम की वहाँ प्रतिष्ठा होते हुए भी मिल के कपड़े ने चरखा और करघा दोनों का नाश कर दिया है। तो भी प्रथा के रूप में चलते हुए चरखे को हमने औद्योगिक ढंग पर चलाने की व्यवस्था की। पुराने चरखों में सुधार करके और अम्बर चरखे की तालीम देकर वहाँ पैदा होनेवाली रुई को वस्त्र स्वावलम्बन के निमित्त कात लेने और बुनवा लेने की योग्यता सबको समझायी। जिससे यह स्पष्ट हो गया कि वस्त्र स्वावलम्बन की पद्धति पर अमल करने से त्रिपुरा की वस्त्र सम्बन्धी गुत्थी बड़ी सरलता से आर्थिक लाभ के साथ हल हो सकती है। ऐसे कार्य के लिए सर्व सेवा संघ ने भी अपने कार्यकर्ता वहाँ भेजने का विचार किया है। गाँधीनिधि द्वारा भी सहायता मिल सकेगी।

गाँधीजी ने जब ग्राम–स्वावलंबन का सिद्धांत देश के सामने रखा तब वह मात्र एक आदर्श कल्पना लगती थी। लेकिन त्रिपुरा में वैसी योजना को अमल में लाने का प्रयत्न करते ही हमें स्पष्ट दर्शन हुए कि किस तरह वह पूरा प्रदेश बड़ी सरलता से स्वावलम्बी और समृद्धवान हो जायगा। इससे खादी और ग्रामोद्योगों में मेरी श्रद्धा दृढ़तर हो गयी।

सैंतीसवाँ प्रकरण

भारत में खादी और ग्रामोद्योगों की सबसे बड़ी प्रदर्शिनी दिल्ली में हुई। इस प्रदर्शिनी के सफल हो जाने पर मैं अपनी कल्पना पट पर आगामी वृहत्तर प्रदर्शिनी के रूप की झाँकी तैयार करता हूँ। आगामी प्रदर्शिनी अन्तराष्ट्रीय स्तर की होगी। उसमें हिन्दुस्तान के ही ग्रामोद्योग नहीं बल्कि विश्व भर के ऐसे ग्रामोद्योगों की झाँकी जनता को मिलेगी जो प्रचंड यंत्रोद्योगों के सामने भी टिके हुए हैं। ये उद्योग किन कारणों से टिके रहे और विकसित हुए, साथ ही अन्य उद्योगों की उन्नति अवनति पर पूरा प्रकाश भविष्य के प्रदर्शन से प्राप्त होगा। इस प्रदर्शिनी में प्रत्येक देश के जीवित उद्योगों के नमूने और उनकी प्रक्रियाएँ उस देश के प्राकृतिक वातावरण में दिखाई जायें। उस देश का भूगोल, वेषभूषा रहन—सहन और अन्य विशेषताएँ भी उसी विभाग में दिखाने की कोशिश की जायगी।

इस प्रदर्शिनी का स्थान बम्बई उचित माना जाना चाहिए। इस प्रदर्शिनी की रचना १००—२०० एकड़ से भी अधिक भूमि पर की जानी चाहिए। इस प्रदर्शिनी का व्यय ५० लाख से १ करोड़ रुपये तक का हो जाने का अन्दाज है। इसके हर एक विभाग की योजना अलग बनायी जायगी और सारी योजनाओं को अमल में लाने के लिए करीब दो वर्ष लगाने होंगे। यह प्रदर्शिनी दो—चार दिन के लिए ही न खोली जाकर लगभग छः मास तक खुली रहेगी। उसकी रचना भारत के वर्तमान स्वरूप की होगी। उत्तर में काश्मीर विभाग होगा जिसमें काश्मीर के हूबहू दर्शन उतारने का प्रयास किया जायगा। उस विभाग की प्राकृतिक रचना तथा पृष्ठभूमि काश्मीर सी होनी चाहिए। वैसे ही सरोवर, वैसे ही मनुष्य, वैसे ही कारीगर अपने ढब से काम कर रहे हों और काश्मीर की कला समृद्धि का वहां प्रदर्शन हो। इसी प्रकार दक्षिण प्रदेश के उद्योग दक्षिणवासियों द्वारा दक्षिणी विभाग में चल रहे होंगे। विश्व भर के यात्री इस प्रदर्शिनी को घूमकर देख आवें तो मानों उन्होंने समस्त भारत का समग्र दर्शन कर लिया हो

ऐसा भासित होना चाहिए। भारत कैसा देश है? इस प्रश्न का उत्तर प्रदर्शिनी देख लेने के बाद बहुत कुछ प्रश्नकर्ता के दिल में आ जाना चाहिए। इसी तरह भारत के प्रत्येक प्रांत की विशेषताओं, लाक्षणिकताओं और समृद्धि के दर्शन उस प्रदर्शिनी को देखकर हो जाने चाहिए। आजाद होने के बाद भारत ने कौन-कौन सी सिद्धियाँ हासिल कीं वे उस प्रदर्शिनी में में प्रत्यक्ष दिखायी देंगी। प्रदर्शिनी के अन्दर जिस प्रदेश का विभाग देख रहे हों उस प्रदेश को ही प्रत्यक्ष देख रहे हैं ऐसा व्यवस्थित हर एक विभाग बनाने का मन्तव्य है। प्रत्येक प्रदेश के नाना प्रकार के खान-पान, फल-फूल तथा मनोरंजन के प्रकार वहाँ देखने को मिलने चाहिए। ऐसे विशाल, भव्य और आश्चर्यनीय प्रदर्शिनी में यातायात, जनसुखकारी तथा विश्राम की नये से नये प्रकार की सुविधाएँ यथेष्ट प्रमाण में मौजूद रक्खी जावें। सवारियों पर बैठे-बैठे वह प्रदर्शिनी देखी जाने योग्य होनी चाहिए। इसे संगठित करने के लिए देश भर के कार्यकर्त्ता, निष्णात तथा कलाकार वहाँ एकत्रित होंगे और हर एक के ज्ञान, अनुभव और अन्वेषण वृत्ति का उस प्रदर्शिनी में पूरा-पूरा उपयोगी भाग होगा। एक स्वतंत्र विभाग में बापू के जीवन कार्य और उनके मूर्तस्वरूप स्वप्न चित्र, उनके उपयोग में आनेवाली ऐतिहासिक वस्तुएं, दस्तावेज, आलेख पत्रादि का संग्रह सजा हुआ रहेगा। दूसरे एक विभाग में पंडित जवाहरलाल नेहरू को विश्वभर में से प्राप्त भेंट व सौगात की वस्तुएं, कला-कारीगरी के अमूल्य नमूने, अभिनंदन पत्र वगैरह समुचित रीति से सजाये हुए होंगे।

तीसरे विभाग में बापू के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी विनोबा भावे की महाभिनिष्क्रमण यात्रा का सम्पूर्ण ज्ञान कराने वाले सचित्र आलेख लगे होंगे जिन पर से दर्शक लोग देखते ही जान सकेंगे कि उन्होंने अपनी भूदान यात्रा द्वारा किस प्रकार उत्तरोत्तर अहिंसक क्रांति का सर्जन किया है। एक चौथे विभाग में देखा जा सकेगा कि भारत आजादी से पहले कैसा था और आजादी के बाद वह कैसा बना जा सका है। सारांश यह कि समग्र प्रदर्शिनी देखकर दर्शकों को बापू की खादी और ग्रामोद्योगी भावनाओं का मूर्तस्वरूप पूरी तरह दिखायी दे और तथा विकेन्द्रित ग्रामोद्योगों और गृहउद्योगों के द्वारा निर्मित स्वावलम्बी सर्वोदयी, सर्व-कल्याणकारी, समृद्ध समाज का चित्र दर्शकों के हृदय पट पर खिंच जाना चाहिए। प्रदर्शिनी देखकर दर्शकों को स्वयं यह मालूम हो जाना चाहिए कि भारत का दुनिया को सनातन काल से क्या संदेश रहा है।

प्रदर्शिनीके मध्य भाग में विश्व के तमाम राष्ट्रों के ग्रामोद्योगों और गृहोद्योगों की वस्तुएं प्रदर्शित की जायेंगी और वहीं उनकी सारी प्रक्रियाओं का प्रत्यक्ष प्रदर्शन भी प्रत्येक देश के विशिष्ट वातावरण में होता रहेगा जिससे उस देश की कला व कारीगरी की झांकी मिल सकेगी। छोटी-छोटी बातें तो इस प्रदर्शिनी में अगणित होंगी। अभी तो इस प्रदर्शिनी का स्वरूप मेरी कल्पना के अनावृत पर्दों में छिपा हुआ है। उसे पूरा का पूरा कल्पना क्षेत्र से बाहर लाना जरा भी कठिन नहीं है।

दिल्ली की प्रदर्शिनी को उसकी लघु आकृति समझना चाहिए। उस लघु आकृति को हम सफलता से पूरा कर सके थे। उसके पदार्थ पाठ द्वारा सब के पुरुषार्थ और सहयोग से इस भविष्य की विराट प्रदर्शिनी को भी हम सफल बनावेंगे। जैसा विशाल यह काम होगा वैसा ही अपने खादी और ग्रामोद्योगों को मजबूत बनाने में इस प्रदर्शिनी का हमें लाभ मिलेगा। अखिल भारत चरखा संघ ने अपने रजतमहोत्सव पर एक प्रदर्शिनी रचने के मंसूबे बांधे थे। उस प्रदर्शिनी के लिए मैंने कल्पनाएं भी कर ली थीं। वह तो न हुआ लेकिन उस प्रदर्शिनी से मुझे उस प्रदर्शिनी की कल्पना मिली है। उस प्रदर्शिनी के लिए मैंने सोचा था कि उसमें चरखा संघ के २५ वर्षीय कार्य काल का आद्योपांत इतिहास, चरखे का विश्व को संदेश और बापू के मनोराज्य के दर्शन ये सब देखा जा सके। इस प्रदर्शिनी की कच्ची योजना तक चरखा संघ ने मंजूर कर दी थी जिसमें दसेक लाख रुपयों के खर्च का अन्दाज लगाया गया था, जिसे रचने में एकाध वर्ष लगाने की धारणा थी और करीब दो महीने इस प्रदर्शिनी को चालू रखने का विचार था। सब लोगों ने इस योजना का स्वागत किया था और कार्यारम्भ होने वाला ही था। लेकिन बापू ने यह निर्णय दिया कि भारत को पहले आजादी की लड़ाई पूरी करके स्वतंत्र होना है और आजादी के लिए अभी कई बलिदान करने बाकी हैं। आजादी के बाद ही ऐसी प्रदर्शिनियों की कल्पना को साकार रूप दिया जा सकता है। इस काल्पनिक प्रदर्शिनी की रचना मैंने भारत के अनरूप करने की बातें सोची थीं। मेरी स्मृति ने वह मानसिक चित्र अब तक सुरक्षित रख छोड़ा था उसी को अब अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी में साकार रूप में उतारने की मेरी मुराद है। ईश्वर से यह मुराद पूरी करने की प्रार्थना है।

अड़तीसवाँ प्रकरण

मैं विलायती कपड़े का व्यापार छोड़कर खादी काम में लगा, उन दिनों का अब ध्यान करने लगता हूं तब अनेक स्मृतियाँ ताजी हो जाती हैं। विलायती कपड़े से खूब कमायी कर रहा था। इतने में स्वदेशी का पागलपन सवार हो गया। सन् १९०६ से १९१८ तक स्वदेशी स्टोर में काम करता रहा। वहाँ से मुझे ५.०० रुपये मासिक मिला करते थे। उसके बाद सेठ कावसजी फ्रामजी के फर्म में कार्यकारी भागीदार बना। वहाँ भी खूब कमायी हो रही थी, लेकिन बापू का जादू अपना काम कर रहा था। उन्होंने मुझे खादी काम में खींचना चाहा और मैं खिंचा चला आया।

खादी काम उन दिनों प्रारम्भिक अवस्था में थी। हम इतना भी नहीं जानते थे कि कौन कातेगा और किस पर कातेगा। विलायती कपड़े के व्यापार को रोकने का प्रयत्न करने की बापू ने आज्ञा दी थी। हर शुक्रवार की रात को मैं गुजरात के किसी न किसी गाँव में जाता था, वहाँ के व्यापारियों से मिलता था, और उसको विलायती कपड़े का व्यापार छोड़ने के लिए समझाता था। सोमवार की सुबह में वापिस बंबई पहुंच जाता था। उन्हीं दिनों में बापू ने श्री इन्दुलाल याज्ञिक को भी गाँवों में प्रचार कार्य के लिए भेजना शुरू किया था। कभी-कभी हम दोनों किसी एक ही गाँव में मिल जाया करते थे। एक दिन भाई याज्ञिक ने मुझे खबर भेजी कि बापू ने विद्यार्थियों को चरखा कातने का आदेश दिया है। मैंने यह सुन लिया था।

मैं एक बार दाहोद जा पहुंचा। मैंने सुना था कि वहाँ के वोहरा कुटुंब की पर्दानशीन महिलाएं किसी जमाने में चरखा कातती थीं। वे गरीबी के कारण सहायक धंधे के तौर पर कताई करती थीं। कुछ समय में चरखे सूत के की मांग खतम हो गयी और चरखे ऊंचे रख दिये गये थे। लेकिन वे बहिनें कातना नहीं भूली थीं। ऐसा ज्ञात हुआ कि पूनी दी जाय तो वे कताई करने को तत्पर हैं। २५० के आसपास महिलाओं ने अपने-अपने चरखे नीचे उतारे और कातने लगीं।

इतने में उनकी जाति के मुखिया ने आज्ञा दी "चरखे न चलाये जायँ। चरखा द्वारा सरकार से संग्राम किया जा रहा है। इसमें अपनी कौम को साथ नहीं देना चाहिए।" बस वे चरखे बन्द हो गये। फिर भील कौम में कताई करायी गयी। प्रारम्भ में बहुत मोटी और खुरदरी खादी बनी और इकट्ठी होती गयी। बम्बई भंडार ने उसे खरीद लिया और बम्बई की मिलों में उसे धुलवाकर उस पर कुन्दी करा ली। फिर वह बाजार में बिक गयी।

एक दिन मैं जम्बूसर गया था। वहाँ के विलायती कपड़ों के व्यापारियों को मैंने अपना व्यापार छोड़ देनेको समझाया। पहला विश्वयुद्ध खतम हो चुका था। मंदी की लहर आ रही थी। ऐसे समय में मिलों के कपड़े के व्यापार में बड़ी जोखम थी। इस ओर मैंने उनका ध्यान खींचा। कई व्यापारी अपने हित की बात समझ गये और अपने धंधे को कुछ हद तक समेट लिये। कुछ ही दिनों में कपड़े के भाव रुपये में आठ आने रह गये और वे व्यापारी हानि से बच गये।

मैंने स्वयं भागीदारी छोड़ दी। हजारों रुपयों का लाभ छोड़ दिया और बापू के मार्गदर्शन पर चलते हुए वस्त्र व्यापार संबंधी अपना ज्ञान और शक्ति खादी कार्य को अर्पित कर दी। सन् १९२० से आज तक मेरा पूरा समय खादी की तरक्की में ही लगा है। मेरी खादी-भावना की बम्बई की जनता ने भावपूर्ण कद्र की है। बम्बई के खादी-प्रेमियों ने मेरे लिए अपने हाथों काते हुए सूत की एक-एक लच्छी इकट्ठी करके ५० अर्ज की ३० गज खादी उसमें से बनवायी और वह थान मुझे गांधी जयंती के अवसर पर एक सार्वजनिक सभा में भेंट किया। मैंने उसे सबसे अधिक पवित्र भेंट माना है। इस थान में से मैंने ढाई-ढाई गज के दो टुकड़े निकाल कर उन्हें त्रिवेणी संगम के पुनीत जल से पवित्र करके अपने कुटुंबी जनों को दे दिये हैं ताकि यह पवित्र खादी मेरे कफन के काम में लग सके।